मुग़ल काल का इतिहास

भारत में मुग़ल काल के इतिहास पर आधारित यह मॉड्यूल इतिहास को दिलचस्प और सम्भावनाओं से भरे विषय के रूप में प्रस्तुत करता है। इसका चित्रमय लेआउट पाठकों को बाँधे रखता है और उनको चिन्तन करने, समझने तथा आगे पढ़ने के लिए प्रेरित करता है। इसके साथ ही यह हमें विभिन्न स्थानों पर इतिहास की तुलना, वर्तमान और परिचित सन्दर्भों से करने के अवसर भी देता है।

इतिहास की कक्षा को जीवन्त और रोचक बनाने के लिए इसमें सभी आवश्यक तत्व मौजूद हैं। कुल मिलाकर यह एक महत्वपूर्ण किताब है – विद्यार्थियों, शिक्षकों और उन सबके लिए, जो इतिहास में रुचि रखते हैं, या नहीं भी रखते!

अँग्रेज़ी में भी उपलब्ध!!

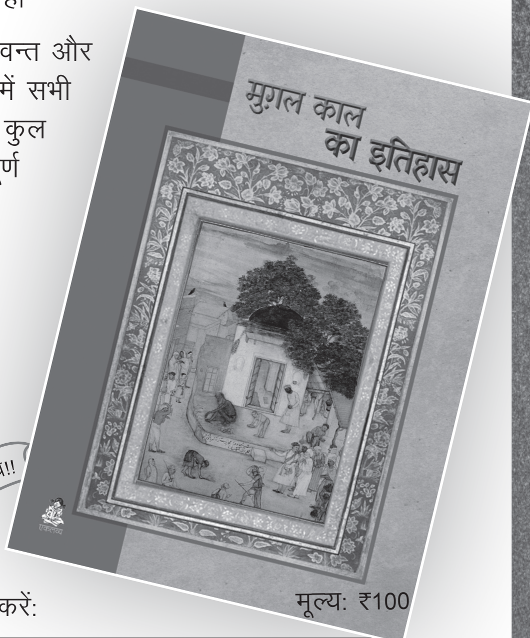

मूल्य: ₹100

आज ही अपनी प्रति बुक करें:

एकलव्य फाउंडेशन
जमनालाल बजाज परिसर, जाटखेड़ी, भोपाल - 462 026 (मप्र)
फोनः **+91 755 297 7770-71-72;** ईमेलः **pitara@eklavya.in**
www.eklavya.in | www.eklavyapitara.in

एकलव्य

कार्बन यौगिकों में सम-अवयवता उर्फ आइसोमरिज़्म

दो कार्बन यौगिक – दोनों का यौगिक फॉरमूला एक-सा, दोनों के आणविक बन्ध भी एक-से, मगर अणुओं की स्थानिक जमावट अलग-अलग। ऐसे में, इन यौगिकों से बनते तत्व क्या एक-से होंगे, या वे भी अलग-अलग? हो सकता है, एक ध्रुवीकृत प्रकाश के तल को क्लॉकवाइज़ घुमाता हो, और दूसरा, एंटीक्लॉकवाइज़? या फिर, एक से पुदीने की महक आती हो, और दूसरे से शाहजीरे की? उमा सुधीर, इस लेख की लेखक, को कार्बन और उसकी इस बहुमुखी प्रतिभा से बड़ा प्यार है। उनके इसी प्यार को जायज़ ठहराने की कोशिश का नतीजा यह लेख है। पढ़कर देखिए, क्या आपका बन्ध भी कार्बन से जुड़ता है?!

21

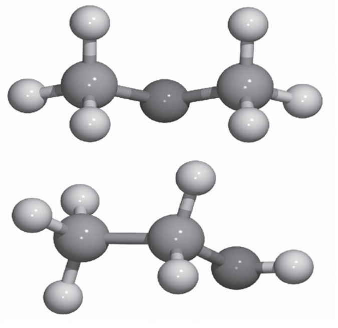

शासकीय स्कूलों का विलय और बन्द होना

सरकारी स्कूलों की गुणवत्ता पर से भरोसा क्यों उठता जा रहा है? बढ़ती तादाद में इन स्कूलों के बन्द होने या आपसी विलय से किन पर, क्या, और कितना असर पड़ रहा है? अतिथि शिक्षकों की भरमार, राजनीतिक दबावों के चलते तबादले, खाली कक्षाएँ, और शहरी-ग्रामीण खाई – ये चन्द कारक हैं भारतीय शिक्षा तंत्र, खास तौर पर मध्य प्रदेश के शिक्षा तंत्र, की मौजूदा स्थिति और समस्या को समझने के लिए। इन, और इनसे जुड़े अन्य, कारकों के जंजाल को आँकड़ों की मदद से समझने और सुलझाने की कोशिश अरविंद सरदाना और प्रियंता घोष इस लेख में करते हैं।

61

शैक्षणिक संदर्भ

अंक-109 (मूल अंक-166), सितम्बर-अक्टूबर 2026

इस अंक में

05 | वाविलोवियन अनुकरण
संकेत राउत

15 | मानव हड्डियाँ कैसे विकसित करें
कार्ली ऐनी यॉर्क

21 | कार्बन यौगिकों में सम-अवयवता उर्फ आइसोमरिज़्म
उमा सुधीर

32 | कमाल का कमाल
आमोद कारखानीस

40 | बिन शब्दों का अर्थ
नीलांश सेठी

49 | बच्चों के लिखना सीखने के रुझान को दिखाती किताब
कमलेश चन्द्र जोशी

55 | प्रोफेसर शिरीन की याद में
रश्मि पालीवाल

57 | एक ताम्रपाषाण युगीन गाँव का जीवन निर्वाह
शिरीन रत्नागर और अजय दांडेकर

61 | शासकीय स्कूलों का विलय और बन्द होना
अरविंद सरदाना और प्रियंता घोष

75 | ट्रॉय का घोड़ा
जयंत विष्णु नारलीकर

85 | बाल और नाखून काटने पर हमें दर्द क्यों नहीं होता?
सवालीराम

एकलव्य

पिटारा

पिटारा अब दिल्ली में भी

पिटारा दिल्ली

पता –
गेट नं. 9, हकीकत नगर,
गुरू तेग बहादुर मेट्रो स्टेशन,
गेट नं. 2 के पास, दिल्ली

सम्पर्क – सत्यप्रकाश

फोन – 9958932191

पिटारा मुम्बई

सम्पर्क – समीर कपाड़िया

द्वारा – क्रिएटिव लर्निंग एसोसिएट्स, 204,
ओरिएंट हाउस, 229/231, सैमुअल मस्जिद, मुंबई

फोन – 9819677361

पिटारा गुजरात

द्वारा – आर्य, सिद्धी पाइप फैक्ट्री के सामने,
नागरिया, धर्मपुर, ज़िला – वलसाड – 396050 (गुजरात)

फोन – 9879178223

पिटारा उदयपुर

द्वारा – विद्या भवन सोसायटी,
डॉ. मोहनसिंह मेहता मार्ग, फतेहपुरा,
उदयपुर – 313001 (राजस्थान)

फोन – 0294-2451497, 9950912525

हर किताब, एक अनुभव

वाविलोवियन अनुकरण

संकेत राउत

Adapt or perish, now as ever, is nature's inexorable

- H.G. Wells

पिछले साल हमारे पड़ोसी किसान के साथ एक बड़ा धोखा हुआ। कोंकण में मानसून के दौरान चारों ओर धान (*Oryza sativa*) की खेती ही दिखाई देती है। तटीय क्षेत्रों में होने वाली अत्यधिक मूसलाधार बारिश के कारण खेत लगभग चार महीनों तक पानी से लबालब भरे रहते हैं। ऐसी परिस्थितियों में धान के अलावा बहुत कम फसलें सफलतापूर्वक उग पाती हैं।

हमारे खेत की तरह ही पड़ोसी किसान ने भी धान की बुवाई की थी। अच्छी वर्षा के कारण उसकी फसल भी बहुत अच्छी बढ़ी। लेकिन कटाई का समय आते-आते उसके खेत में एक अजीब परिवर्तन दिखाई देने लगा। धान की बालियों पर लम्बे-लम्बे नुकीले रेशे निकल आए थे और कुछ दानों का रंग काला पड़ने लगा था। कोंकण में इस पौधे को 'देवभात' (*Echinochloa oryzoides*) कहा जाता है।

देवभात धान से मिलता-जुलता एक जंगली पौधा है। इसके बीजों को खाया जा सकता है, लेकिन वे इतनी आसानी-से झड़ जाते हैं कि कटाई और उसके बाद की प्रक्रियाओं तक बहुत कम दाने बच पाते हैं। इसी कारण इसे धान के खेतों में उगने वाली एक हानिकारक खरपतवार (weed) माना जाता है जो उस किसान के बीजों में मिलावट के कारण उगी थी। परिणामस्वरूप, पूरे खेत में देवभात फैल गया और पड़ोसी किसान की धान की पैदावार में भारी कमी आ गई।

लेकिन वह किसान इस तरह कैसे फँस गया? क्या बुवाई के समय उसे बीजों के बीच का अन्तर समझ नहीं आया होगा? या फिर रोपाई के दौरान वह देवभात के पौधों की पहचान नहीं कर पाया होगा? यदि वह उन्हें पहचान लेता, तो निश्चित ही इस खेत पर अतिक्रमण करने वाली तथा पैदावार घटाने वाली खरपतवार को समय रहते हटा देता।

रोपाई के समय अनुभवी किसान धान जैसी दिखने वाली खरपतवारों को पहचानकर निकाल देते हैं। किन्तु देवभात के पौधे धान के पौधों से इतने अधिक मिलते-जुलते हैं कि पूरी सावधानी बरतने के बावजूद कुछ पौधे खेत में रह जाते हैं। यह अनुकरण

चित्र-1: धान

चित्र-2: देवभात

(mimicry) का एक उत्कृष्ट उदाहरण है। ऊपर दिए गए चित्र से धान और देवभात के बीच की समानता तथा उनके अनुकरण का अनुमान लगाया जा सकता है।

20वीं सदी के प्रसिद्ध रूसी वनस्पति वैज्ञानिक निकोलाई वाविलोव (1887–1943) ने इस प्रकार के अनुकरण पर विशेष प्रकाश डाला था। वाविलोव को दुनिया के सबसे प्रतिभाशाली वनस्पति वैज्ञानिकों और आनुवंशिकीविदों में गिना जाता है। उन्होंने खेती की फसलों की उत्पत्ति, विविधता और उनके जंगली सम्बन्धियों पर महत्वपूर्ण शोध किए। हालाँकि, सोवियत संघ में जोसेफ स्टालिन के शासनकाल के दौरान उन्हें राजनीतिक कारणों से प्रताड़ित किया गया और जेल में डाल दिया गया। जेल की कठोर परिस्थितियों के कारण 1943 में उनकी मृत्यु हो गई। धान और उसकी खरपतवारों के बीच पाए जाने वाले इस विशेष प्रकार के अनुकरण का वर्णन करने में उनके

योगदान के लिए, इसे वाविलोवियन अनुकरण (Vavilovian mimicry) कहा जाता है।

त्री-ध्रुवीय प्रणाली

इस अनुकरण में मॉडल प्रजाति, अनुकरण करने वाली प्रजाति और धोखा खाने वाली प्रजाति यानी कि तीन प्रजातियाँ शामिल होती हैं। ऊपर दिए गए उदाहरण में मॉडल प्रजाति धान है, जिसकी खेती फसल के रूप में की जाती है। इसके गुणों का अनुकरण करने वाली प्रजाति देवभात है, जो धान के खेतों में उगने वाली एक खरपतवार है। चूँकि यह अनुकरण कृषि से जुड़ा है, इसलिए इसमें धोखा खाने वाला प्राणी अधिकांशतः किसान होता है। वाविलोवियन अनुकरण के अन्य उदाहरण भी हम आगे देखेंगे, लेकिन उससे पहले यह समझना आवश्यक है कि इस प्रकार का अनुकरण विकसित कैसे हुआ।

खेती का विकास

वाविलोवियन अनुकरण को समझने के लिए हमें खेती के इतिहास पर एक नज़र डालनी होगी, क्योंकि इस अनुकरण के विकास में कृषि का महत्वपूर्ण योगदान रहा है। खेती निरीक्षण और चयन (selection) पर आधारित एक सुव्यवस्थित वैज्ञानिक प्रक्रिया है। इसकी नींव लगभग ईसा पूर्व 10,000 से 12,000 साल पहले तब पड़ी जब पश्चिम एशिया के फर्टाइल क्रेसेंट (Fertile Crescent) क्षेत्र में मनुष्य ने पहली बार कुछ उपयोगी पौधों के बीजों की योजनाबद्ध ढंग से बुवाई और उनकी देखभाल शुरू की। खेती के कारण मनुष्य ने खानाबदोश जीवन छोड़कर स्थायी बस्तियाँ बसानी शुरू कीं। भोजन की उपलब्धता होने से उसके पास अपने समय और श्रम को अन्य कार्यों में लगाने का अवसर मिला जिसके परिणाम हमें आज के आधुनिक जीवन में देखने को मिलते हैं।

आज खेती की प्रक्रिया में पिछले वर्ष की फसल के बीजों को अगले वर्ष बुआई के लिए बचाकर रखा जाता है। लेकिन प्रश्न यह उठता है कि पहली बार बोए गए बीज कहाँ से आए होंगे? हम अनुमान लगा सकते हैं कि उस समय मनुष्य को कुछ उपयोगी बीजों, जैसे गेहूँ, जौ आदि की जानकारी रही होगी, जिन्हें खाया जा सकता था। उसने इन बीजों वाली वनस्पतियों को जंगलों या नदी के किनारे उगते हुए देखा होगा। सम्भवतः उसने यह भाँप लिया होगा कि यदि इन उपयोगी बीजों को अपने किसी मनचाहे स्थान पर उगाया जा सके, तो यह उसके लिए अधिक सुविधाजनक होगा।

उन्होंने जंगलों से कुछ बीज एकत्र कर शायद उनको उपयुक्त स्थान पर बोना शुरू किया और इस तरह खेती की शुरुआत हुई। इसका एक अर्थ

यह भी है कि आज की अधिकतर फसलें अपनी जंगली प्रजातियों (wild varieties) से विकसित हुई हैं।

मनुष्य और फसलें

इन वनस्पतियों के भीतर भी मनुष्य ने कुछ प्राकृतिक विविधताएँ देखी होंगी। उदाहरण के लिए, गेहूँ की कुछ किस्मों में दाने छोटे, कुछ में बड़े होते होंगे; कुछ पौधे अधिक बीज देते होंगे, जबकि कुछ की पत्तियाँ लम्बी या चौड़ी होती होंगी। मनुष्य ने इनमें से अधिक उपयोगी प्रकारों का चयन किया और उनके बीजों को अगली फसल के लिए सुरक्षित रखना शुरू किया। उदाहरण के लिए, यदि गेहूँ उगाने का उद्देश्य अधिक अनाज उत्पादन था, तो मनुष्य ऐसे पौधों का चयन करता होगा जिनमें खाने योग्य और बड़े दाने हों एवं जो अधिक बीज उत्पन्न करते हों। वहीं, यदि गेहूँ का उपयोग पशुओं के चारे के लिए किया जा रहा था, तो अधिक और लम्बी पत्तियाँ देने वाले पौधों को प्राथमिकता दी जाती होगी, भले ही उनमें बीजों की संख्या कम हो।

इस चुनाव के अन्य पैमाने भी रहे होंगे। जैसे पौधे का आकार, पकने का समय, रोगों को सहन करने की क्षमता आदि। अलग-अलग फसलों के साथ मनुष्य ने इसी प्रकार चयन और संरक्षण की प्रक्रिया अपनाई। बाद में मनुष्य ने प्रयोगों के माध्यम से और भी अधिक उपयोगी किस्मों का विकास किया। इसलिए हम कह सकते हैं कि मानवीय हस्तक्षेप के कारण फसलें विकसित (evolve) होती गईं। इसी प्रक्रिया को फसलों का डोमेस्टिकेशन कहा जाता है।

लेकिन इस पूरी प्रक्रिया का परिणाम केवल फसलों के विकास तक ही सीमित नहीं था। खेत में फसलों के साथ प्रतिस्पर्धा करने वाली देवभात जैसी खरपतवारें भी उगती थीं। आज भी खरपतवारों का प्रबन्धन किसानों के सामने एक बड़ी चुनौती है। इसका एक कारण यह है कि खेती की प्रक्रिया के साथ-साथ खरपतवार भी विकसित होते रहे हैं। चूँकि खरपतवार फसलों के साथ पानी, पोषक तत्व और स्थान के लिए प्रतिस्पर्धा करते हैं, इसलिए मनुष्य का स्वाभाविक झुकाव खेत से उन्हें उखाड़कर नष्ट करने की ओर रहा। लेकिन अत्यन्त अनुकूलनशील वनस्पतियों के रूप में कुछ खरपतवारों ने ऐसी विशेषताएँ विकसित कर लीं, जिनसे वे मानवीय चयन से बचने में सफल रहीं। इसका एक उल्लेखनीय उदाहरण वाविलोवियन अनुकरण है।

इसमें खरपतवार की प्रजातियाँ फसल जैसी दिखने के साथ-साथ उनके कुछ बाहरी गुणों का अनुकरण करती हैं। वनस्पति वैज्ञानिक निकोलाई वाविलोव ने इस बात की ओर ध्यान दिलाया कि लम्बे समय तक खेती और मानव चयन के दबाव में कुछ खरपतवार इतनी अच्छी तरह

अनुकूलित हो सकती हैं कि उन्हें सम्बन्धित फसल से अलग पहचानना कठिन हो जाता है। हाथ से खरपतवार निकालते समय दृश्यात्मक अनुकरण के कारण फसल जैसी दिखने वाली खरपतवार अनजाने में मानवीय चयन प्रक्रिया से बच जाती है और फसल के साथ-साथ विकसित होती रहती है। इस प्रकार, फसल का डोमेस्टिकेशन और खरपतवारों का अनुकूलन एक-दूसरे से गहरे रूप से जुड़ी हुई प्रक्रियाएँ थीं।

खरपतवारों के इस विकास के कुछ अप्रत्याशित फायदे भी हैं, जिन पर हम आगे चर्चा करेंगे।

आक्रामक अनुकरण

वाविलोवियन अनुकरण त्री-ध्रुवीय प्रणाली है, यह हमने देखा। वाविलोवियन अनुकरण में मॉडल हानिकारक नहीं, बल्कि हानिरहित या उपयोगी प्रजाति होती है। उदाहरण के लिए, किसान के खेत में उगने वाली हानिकारक खरपतवार देवभात मिमिक का काम करती है, जबकि उपयोगी फसल धान मॉडल होती है। किसान यहाँ चयनकर्ता की भूमिका निभाता है।

वाविलोवियन अनुकरण में मॉडल प्रजाति पर भी नकारात्मक प्रभाव पड़ता है। उदाहरण के लिए, देवभात जैसी खरपतवार अनुकरण के माध्यम से फसल के खेत में अतिक्रमण करती है और धीरे-धीरे फसल के साथ प्रतिस्पर्धा करती है जो मॉडल प्रजाति के लिए हानिकारक हो सकता है। यदि ऐसी खरपतवार को नियंत्रित न किया जाए, तो वह फसल के क्षेत्र में लगातार बढ़ सकती है और खेत में मॉडल प्रजाति अर्थात् फसल का अनुपात कम हो सकता है। हालाँकि, कृषि में मनुष्य लगातार खरपतवारों को नियंत्रित करता है, इसलिए सामान्यतः ऐसा होने नहीं दिया जाता।

चूँकि वाविलोवियन अनुकरण में अनुकरण के कारण मिमिक को लाभ और मॉडल को हानि होती है, इस दृष्टि से वाविलोवियन अनुकरण को आक्रामक अनुकरण (aggressive mimicry) से जोड़ा जा सकता है।

वाविलोवियन अनुकरण में मॉडल और धोखा खाने वाले के बीच एक प्रकार का चयनात्मक सम्बन्ध होता है। यहाँ मॉडल प्रजाति उपयोगी फसल होती है, जबकि धोखा खाने वाला मनुष्य, विशेषकर किसान, होता है, जो फसल और खरपतवार के बीच अन्तर करके खरपतवार को हटाने का प्रयास करता है। दूसरी ओर, खरपतवार इस चयन दबाव के प्रति लगातार अनुकूलित होती रहती है। यदि कोई खरपतवार धान जैसी दिखाई देती है या उसके कुछ महत्वपूर्ण गुणों का अनुकरण करती है, तो किसान के लिए उसे पहचानना और निकालना कठिन हो जाता है। परिणामस्वरूप, ऐसी खरपतवारें बार-

बार बच निकलती हैं और अगली पीढ़ियों में अनुकरण से जुड़े उनके गुण अधिक फैल सकते हैं। इस प्रकार, किसान द्वारा किया जाने वाला निरन्तर चयन दबाव वाविलोवियन अनुकरण के विकास को प्रेरित करता है।

फसलों के समान दिखाई देने वाली खरपतवारें भी मानवनिर्मित आवास के साथ अनुकूलन करते हुए मानवीय चयन के अधीन आती हैं। कृषि प्रणाली के विशेष वातावरण के कारण कुछ खरपतवारों में 'डोमेस्टिकेशन सिंड्रोम' विकसित हो जाता है। खेत में टिके रहने के लिए खरपतवारें धीरे-धीरे फसल का अधिक-से-अधिक अनुकरण करने लगती हैं और उनमें फसल के कुछ उपयोगी गुण विकसित हो जाते हैं, जैसे बीजों का आकार, पत्तियों का आकार और बीजों का बालियों से आसानी-से न गिरना आदि। परिणामस्वरूप, ये खरपतवारें देखने में फसल के काफी समान हो जाती हैं। खरपतवार जितनी अधिक फसल के समान दिखाई देती है, उतनी ही उसके नष्ट होने की सम्भावना कम हो जाती है। इसी प्रक्रिया के दौरान कभी-कभी द्वितीयक फसलों (secondary crops) का विकास भी होता है। द्वितीयक फसल वह खरपतवार है, जो विकास की इस प्रक्रिया के दौरान अन्ततः मनुष्य के लिए उपयोगी सिद्ध हो जाती है। इसका एक उदाहरण राई (Rye; *Secale montanum*) है।

राई का विकास: खरपतवार से फसल तक

खरपतवारों का नाश सामान्यतः उनमें बीज आने के बाद किया जाता है, क्योंकि अनुकरण के कारण उनकी पत्तियाँ देखने में काफी हद तक मूल फसल जैसी ही होती हैं। इसी कारण हमारे पड़ोसी किसान को भी धोखा हुआ। धान और देवभात में रोपाई के समय तक बहुत कम अन्तर दिखाई देता है, इसलिए धान के बीजों में मिले देवभात के बीजों को अलग करना अत्यन्त कठिन होता है। हालाँकि, बीज आने के बाद देवभात की बालियों में विकसित होने वाले विशिष्ट कुसों (awns; बाली पर निकले लम्बे, काँटेनुमा रेशे) के आधार पर इसे धान से अलग पहचानना सम्भव हो जाता है। यदि खेत में देवभात अधिक मात्रा में उग जाए, तो किसान अगले वर्ष बुवाई के लिए उस खेत से प्राप्त बीजों का उपयोग नहीं करते हैं। इस प्रकार, देवभात की पहचान और उसके बीजों का खेत से बाहर रह जाना, उसके प्रसार को सीमित करने में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है।

जंगली राई (wild rye) के साथ भी कुछ ऐसा ही हुआ, जो भूमध्यसागरीय क्षेत्र में बड़े पैमाने पर पाई जाने वाली एक प्रजाति है। शुरुआत में राई केवल गेहूँ और जौ के साथ उगने वाली एक खरपतवार थी, जिसे किसान इन अनाजों से अलग करके

चित्र-3: जौ *(Hordeum vulgare)*

चित्र-4: गेहूँ *(Triticum aestivum)*

चित्र-5: राई *(Secale montanum)*

हटा देते थे। लेकिन विकासक्रम में एक मोड़ आया और इस खरपतवार की स्थिति बदल गई।

चूँकि किसान जंगली राई को गेहूँ और जौ से अलग करके निकाल देते थे, इसलिए लगातार चयन दबाव के कारण राई के वे पौधे अधिक सफलतापूर्वक बचे, जो दिखने में गेहूँ और जौ के समान थे। इन पौधों को किसान के लिए पहचानना और अलग करना कठिन था, जिसके कारण वे खरपतवार के रूप में खेतों में बने रहे और प्रजनन करते रहे। इस प्रकार, खरपतवार के रूप में खेत

में टिके रहने के लिए फसल के समान दिखाई देने का यह अनुकरण जंगली राई के लिए फायदेमन्द सिद्ध हुआ। दिए गए चित्र में आप गेहूँ, जौ और राई के बीच समानता को देख सकते हैं।

दिखने में गेहूँ के समान होने के कारण किसान जंगली राई को गेहूँ से अलग नहीं कर पाते थे, लेकिन गेहूँ और जंगली राई के बीच एक महत्वपूर्ण अन्तर था, जिसने राई के विस्तार को सीमित कर रखा था। गेहूँ एक वार्षिक फसल है, जिसके दाने प्रत्येक मौसम के अन्त तक पककर तैयार हो जाते हैं। इसके विपरीत, जंगली राई एक बहुवर्षीय (perennial) पौधा है जिसके दाने तैयार होने में लगभग दो वर्ष लगते हैं। इस कारण, कटाई के बाद खेत की जुताई करते समय जंगली राई के अधिकांश पौधे नष्ट हो जाते थे और उनका प्रसार सीमित रहता था। हालाँकि, कभी-कभी ऐसे उत्परिवर्तित (mutated) पौधे उत्पन्न होते रहे होंगे, जिनमें गेहूँ की तरह उसी मौसम के अन्त तक दाने तैयार हो जाते थे, और खेत में गिरे हुए या गेहूँ के बीज में मिले वे दाने इस वनस्पति के वंश को बनाए रखते थे। इस प्रकार, शुरुआती अवस्था में राई की यह किस्म खरपतवार के रूप में अपने अनुकरण के कारण खेत में बनी रही होगी। समय के साथ, यह किस्म विकसित होते हुए धीरे-धीरे गेहूँ के अधिक निकट दिखाई देने लगी। अन्ततः एक अवस्था ऐसी आई, जब राई में भी गेहूँ के समान बड़े दाने और अधिक मज़बूत बाली जैसी संरचनाएँ विकसित हो गईं। इस प्रकार, गेहूँ के साथ उसका अनुकरण केवल बाहरी रूप तक सीमित नहीं रहा, बल्कि उसके जीवन-चक्र और कृषि- परिस्थितियों के अनुरूप अन्य महत्वपूर्ण गुणों में भी समानता विकसित हुई।

मनुष्य के लिए उपयोगी सिद्ध होने के कारण राई की इस किस्म का अन्ततः डोमेस्टिकेशन हुआ और वह एक वार्षिक फसल में तब्दील हो गई। अब राई केवल एक खरपतवार नहीं रह गई थी, बल्कि मनुष्य के लिए एक उपयोगी फसल बन चुकी थी। खेत में उसे संरक्षण भी मिलने लगा। मनुष्य अब उसे खेत से उखाड़कर नष्ट करने की बजाय गेहूँ की तरह उसकी खेती करने लगा। इसी प्रक्रिया को वाविलोव ने द्वितीयक या अनुकरण से निर्मित फसलें (secondary/mimetic crops) कहा है, क्योंकि इन फसलों के विकास में अनुकरण की महत्वपूर्ण भूमिका रही थी। राई के आनुवंशिक अध्ययनों से भी यह संकेत मिलता है कि उसके जंगली किस्म से फसल तक के विकासक्रम में वह एक मध्यवर्ती खरपतवार अवस्था से होकर गुज़री थी।

खरपतवारों की एक प्रमुख विशेषता उनकी मज़बूती और कठिन

परिस्थितियों में भी टिके रहने की क्षमता है, जो कई बार गेहूँ जैसी फसलों की तुलना में अधिक होती है। इसलिए, गेहूँ का अनुकरण करने के कारण जब राई को फसल के रूप में स्वीकार किया गया, तो इसकी खेती उन क्षेत्रों में भी सम्भव हुई जहाँ गेहूँ का उत्पादन कठिन या लगभग असम्भव था, जैसे पहाड़ी क्षेत्र। इस प्रकार, मनुष्य को खेती का विस्तार करने का अवसर राई जैसी खरपतवार के डोमेस्टिकेशन के कारण प्राप्त हुआ।

द्वितीयक फसलों के डोमेस्टिकेशन के दौरान आनुवंशिक विविधता दो चरणों में कम हो सकती है। पहले चरण में, जब मनुष्य खेत से खरपतवारों को उखाड़कर हटाता है, तब मुख्य फसल के समान दिखाई देने वाले कुछ सीमित पौधे ही बच पाते हैं, जबकि अन्य पौधे नष्ट हो जाते हैं। इस प्रकार, खरपतवारों की आबादी में पहले से मौजूद आनुवंशिक विविधता का एक हिस्सा चयन के कारण समाप्त हो जाता है।

दूसरे चरण में, डोमेस्टिकेशन के दौरान मनुष्य अपनी उपयोगिता के आधार पर केवल कुछ पौधों का चयन करता है। इसलिए जंगली आबादी की तुलना में विकसित फसल में आनुवंशिक विविधता बहुत कम दिखाई देती है। राई के मामले में भी इसी प्रकार की प्रक्रिया हुई होगी, जिसमें पहले खरपतवार के रूप में चयन और बाद में मनुष्य द्वारा किए गए चयन ने उसकी आनुवंशिक विविधता को सीमित किया होगा।

ओट्स का अनुकरण

यही स्थिति ओट्स (*Avena sativa* और *Avena byzantina*) के मामले में भी दिखाई देती है। ओट्स कम उपजाऊ भूमि में भी अच्छी तरह उग सकते हैं और गेहूँ एवं जौ के साथ खरपतवार के रूप में भी पाए जाते हैं। जंगली खरपतवार ओट्स में बीज आसानी-से झड़ने (shattering) के कारण उनकी कटाई और संग्रह करना किसान के लिए कठिन होता था। लेकिन विकासक्रम के दौरान कुछ ऐसे खरपतवार ओट्स पौधे उत्पन्न हुए होंगे, जिनमें बीज आसानी-से न झड़ने (non-shattering) और बाली में दानों को मज़बूती से पकड़े रखने वाली संरचना (tough spindle) विकसित हो गई थी। ऐसे पौधों के बीज कटाई तक बाली में बने रहते थे, जिससे उन्हें एकत्र करना आसान

चित्र-6: ओट्स

हो जाता था। इसलिए ये किस्में मनुष्य के लिए अधिक उपयोगी सिद्ध हुईं और परिणामस्वरूप, ओट्स एक खेती के योग्य फसल के रूप में स्थापित हो गए।

अन्य उदाहरण एवं सीख

वाविलोवियन अनुकरण के अन्य उदाहरणों में सूरजमुखी के खेतों में पाए जाने वाले जंगली सूरजमुखी तथा चुकन्दर (बीट) की फसल के साथ उगने वाला जंगली बीट (wild beet) शामिल हैं। इन खरपतवारों में अपनी सम्बन्धित फसलों से समानता के कारण खेत में बने रहने की क्षमता विकसित हुई।

वाविलोवियन अनुकरण से हम यह समझ सकते हैं कि खरपतवार मनुष्य की कृषि गतिविधियों और उनके द्वारा आरोपित चयन दबाव के साथ लगातार तालमेल बिठाते रहते हैं। लेकिन हमें यह भी ध्यान में रखना चाहिए कि बदलती परिस्थितियों के अनुसार राई जैसी कुछ खरपतवार आगे चलकर मनुष्य के लिए उपयोगी भी सिद्ध हो सकती हैं।

जिन पौधों को हम अक्सर केवल घास या अनावश्यक खरपतवार समझकर नज़रअन्दाज़ कर देते हैं, वे खरपतवार वास्तव में जीवित रहने के लिए इन्सान को चकमा देने की क्षमता रखते हैं। वाविलोवियन अनुकरण दर्शाता है कि प्रकृति में जीवित रहने की प्रक्रिया कितनी रोचक हो सकती है।

वाविलोव का यह कार्य बेहद दिलचस्प है। वनस्पति जगत का उनका अध्ययन जितना व्यापक था, उतना ही गहरा भी था। दूसरी ओर, स्वयं वाविलोव भी एक प्रेरणा-स्रोत के रूप में उभरकर सामने आते हैं। वाविलोव का चरित्र हमें वैज्ञानिक जगत में स्वतंत्र सोच, सत्य की खोज और अपने निष्कर्षों को स्वतंत्र रूप से व्यक्त करने के महत्व की याद दिलाता है।

संकेत राउत: वन्यजीव प्रेमी हैं तथा वन्यजीव अध्ययनों एवं गणनाओं में भाग लेते रहते हैं। पक्षी और तितलियाँ रुचि के मुख्य क्षेत्र हैं। जंगली जानवरों के बारे में पढ़ने में और उनके व्यवहार का विश्लेषण करने में आनन्द आता है। शिक्षा के क्षेत्र में कार्यरत हैं और शिक्षक प्रशिक्षण का कार्य करते हैं।

सभी फोटो इंटरनेट से साभार।

सन्दर्भ:

- https://www.sciencedirect.com/science/article/pii S1674205222002659
- https://onlinelibrary.wiley.com/doi/10.1111/wre.12566
- https://bioone.org/journals/weed-science/volume-62/issue-2/WS-D-13-00122.1/Vavilovian-Mimicry--Nikolai-Vavilov-and-His-Little-Known-Impact/10.1614/WS-D-13-00122.1.full
- Vavilovian mimicry - Wikipedia

मानव हड्डियाँ कैसे विकसित करें

आधुनिक बोन ग्राफ्ट में कोरल की एक आश्चर्यजनक भूमिका

कार्ली ऐनी यॉर्क

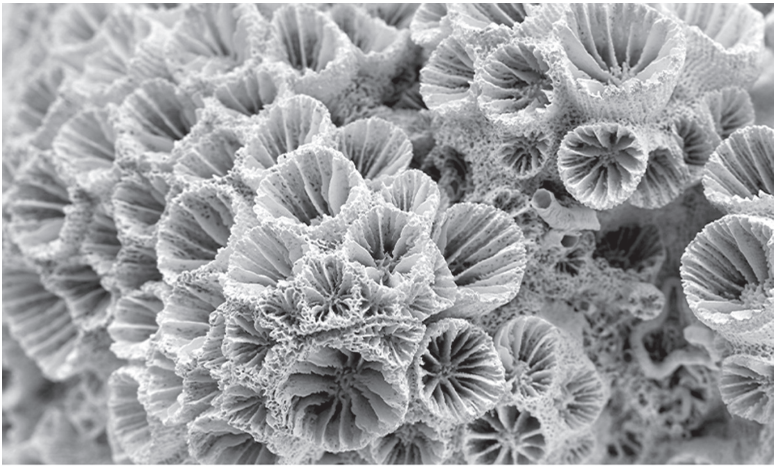

फोटो - Vsevolod FINCH Ziablov

प्रवाल (कोरल) का कंकाल, जिसमें जटिल, फूल जैसी कैलिस (कोरालाइट्स) संरचनाएँ स्पष्ट दिखाई देती हैं।

सन् 1668 में, जैकब वैन मीकेरन नाम के एक डच डॉक्टर के पास एक साहसिक योजना थी। हाल ही में उनकी देखभाल में एक मरीज़ आया, जिसको एक अनोखी चोट थी – उसकी खोपड़ी बुरी तरह से क्षतिग्रस्त हो गई थी। वह एक सिपाही था जिसने युद्ध की क्रूरताएँ देखी थीं, और हालाँकि वह यह दास्तान सुनाने के लिए ज़िन्दा बच गया, लेकिन युद्ध के मैदान में वह बुरी तरह ज़ख्मी हो गया था। वैन मीकेरन ने इसे सर्जरी से ठीक करने का प्रस्ताव रखा, घायल हिस्से में किसी दूसरी खोपड़ी का एक टुकड़ा लगाकर उसकी आकृति को ठीक करने का। आप सोच रहे होंगे कि बिना कोई अपराध किए खोपड़ी का टुकड़ा कहाँ से मिलेगा, और यही सवाल वैन मीकेरन के मन में भी था।

अनोखे बोन ग्राफ्ट की शुरुआत

मानव खोपड़ी का इस्तेमाल करना थोड़ा मुश्किल हो सकता था, इसलिए उन्होंने तय किया कि सबसे अच्छा उपाय होगा, कुत्ते की खोपड़ी का एक

चित्र-1: डायर वुल्फ एवं मानव खोपड़ी के आकार की तुलना।

टुकड़ा इस्तेमाल करना (शायद वैन मीकेरन बिल्ली-प्रेमी थे)। तो, उन्होंने सिपाही का सिर काटकर खोला और कुत्ते की खोपड़ी का टुकड़ा चोट वाली जगह पर लगा दिया। सर्जरी सफल रही, और सिपाही ने आगे चलकर एक... नाखुश ज़िन्दगी जी। दरअसल, एक ऐसी समस्या आ खड़ी हुई जिसकी कल्पना वैन मीकेरन ने नहीं की थी। मरीज़ के चर्च ने तय किया कि अब वह शख्स आंशिक रूप से कुत्ता हो गया है, इसलिए अब वह चर्च का सदस्य नहीं रह सकता। चर्च ने उसे समुदाय से बाहर कर दिया, और समुदाय से दूर होने पर वह बेहद व्यथित हो गया।

बेबस होकर सिपाही वैन मीकेरन के पास लौटा और उनसे कुत्ते की खोपड़ी का टुकड़ा निकाल देने की विनती की। वैन मीकेरन ने अनमने मन से हामी भर दी, लेकिन उन्हें अपनी सफल सर्जरी को नष्ट करने का दुख भी था। जब उन्होंने दूसरी बार सिपाही की खोपड़ी खोली, तो दृश्य चौंकाने वाला था। कुत्ते की खोपड़ी का वह टुकड़ा सिपाही की खोपड़ी के साथ पूरी तरह जुड़ चुका था और अब उसे निकालना असम्भव था। उन्होंने दर्ज इतिहास में शायद सबसे पहली सफल अस्थि प्रत्यारोपण (बोन ग्राफ्ट) प्रक्रिया की थी।

बोन ग्राफ्ट: कठिन चिकित्सा चुनौती

बोन ग्राफ्ट तकनीक 1600 के दशक से अब तक बहुत आगे बढ़ चुकी है, और आज जिन सामग्रियों

का उपयोग किया जाता है, उनके कारण लोगों को अपने चर्च से बहिष्कृत नहीं किया जाता। लेकिन बोन ग्राफ्ट सर्जरी में अब भी कई तरह की समस्याएँ बनी हुई थीं। हड्डियाँ एक खास तरह का ऊतक (tissue) होती हैं, क्योंकि इनमें क्रिस्टल के स्वरूप में खनिज, प्रोटीन से जुड़े होते हैं। कोलेजन का जाल इन खनिजों को सही तरीके से एकसाथ रखने में मदद करता है। हड्डियों को इतना मज़बूत होना चाहिए कि हमारा शरीर जो दबाव डालता है, उसे सह सकें, और साथ ही इतनी हल्की भी होनी चाहिए कि हम आसानी-से हिल-डुल और चल-फिर सकें।

यह एक मुश्किल सन्तुलन है, इसलिए इसे हासिल करने के लिए हड्डियों में कई परतें होती हैं। बाहर की सफेद और सख्त परत, जिससे हम कंकाल के रूप में सबसे ज़्यादा परिचित होते हैं, मज़बूत और ठोस होती है। लेकिन अन्दर का हिस्सा खोखला होता है और उसमें स्पंजी, छिद्रदार ऊतक मौजूद होता है जिसमें रक्त नलिकाएँ उपस्थित होती हैं। हड्डियाँ जीवित ऊतक हैं, जो लगातार खुद को नया रूप देते रहते हैं, इसलिए यदि हड्डी में फ्रैक्चर छोटा है, तो वह अपने आप ठीक हो जाता है। लेकिन अगर बीच में बड़ा खाली हिस्सा हो, तो हड्डी के लिए खुद को ठीक करना मुश्किल हो जाता है। इसका सबसे अच्छा इलाज हड्डी का ग्राफ्ट लगाना है। उचित संरचना मिलने पर हड्डी, नए विकसित हिस्सों के साथ ग्राफ्ट को जोड़कर, उसे अपने में समाहित कर लेती है।

जैसा कि वैन मीकेरन ने देखा, ग्राफ्ट के लिए हड्डियों को ढूँढना पेचीदा हो सकता है। एक विकल्प अंगदाता का उपयोग करना है, लेकिन इसके लिए मृत शरीर की आवश्यकता होती है और इससे रोग संक्रमण की थोड़ी सम्भावना भी बनी रहती है। दूसरा तरीका यह है कि हम इस काम के लिए हड्डी का एक टुकड़ा रोगी के शरीर से ही लें। इसमें दो सर्जरी करनी पड़ती हैं – एक, जिसमें हड्डी का टुकड़ा रोगी के किसी अन्य हिस्से से निकाला जाता है, और दूसरी, जिसमें इसे उस स्थान पर लगाया जाता है जहाँ ज़रूरत है। दो सर्जरी के कारण इस तरीके में जटिलताओं का जोखिम बढ़ जाता है।

सालों तक डॉक्टर एक बेहतर विकल्प की तलाश करते रहे, लेकिन ऐसा कोई पदार्थ नहीं मिला जो कारगर साबित हो सके। कृत्रिम सामग्रियों जैसे लकड़ी और संगमरमर के साथ प्रयोग किए गए, मगर कोई सफलता नहीं मिली। पहला विदेशी पदार्थ जिसने थोड़ी-सी उम्मीद की किरण जगाई, वह था प्लास्टर ऑफ पेरिस। सबसे बड़ी चुनौती थी एक

कृत्रिम संरचना बनाना, जिसमें ऐसी जाली हो जो सम्पूर्ण पुनर्निर्मित हड्डी में रक्त वाहिकाओं को बढ़ने दे। यह कार्य काफी कठिन साबित हुआ। इंजीनियरों ने छिद्रयुक्त सिरेमिक से सहायक संरचना बनाने की कोशिश की, लेकिन उसमें प्राकृतिक हड्डी जैसी एकसमान आन्तरिक संरचना नहीं थी। इसी कारण डॉक्टरों के पास या तो मृत शरीर की हड्डी का उपयोग करने या फिर रोगी की दो सर्जरी करने के अलावा और कोई विकल्प नहीं बचता था।

कोरल में छिपी ग्राफ्ट की सम्भावना

जॉन वेबर जब कोरल रीफ का अध्ययन कर रहे थे तब उनके दिमाग में बोन ग्राफ्ट का खयाल दूर-दूर तक नहीं था। वे पेन स्टेट यूनिवर्सिटी में समुद्री भूवैज्ञानिक (marine geologist) थे और उन्हें चिकित्सा समुदाय की कमियों की तुलना में कोरल की रासायनिक संरचना को समझने में कहीं अधिक रुचि थी। वेबर विशेष रूप से यह समझना चाहते थे कि कोरल कंकाल में पाए जाने वाले रसायन, प्रजाति और पर्यावरण के आधार पर किस प्रकार बदलते हैं। उन्होंने 1960 और 1970 के दशक में इन विषयों पर कई शोध-पत्र प्रकाशित किए।

जब पेन स्टेट (Penn State) यूनिवर्सिटी को कुछ नई और अत्याधुनिक तकनीक मिली, तो वेबर का शोध पूरी तरह बदल गया। पेन स्टेट अमेरिका के उन शुरुआती शोध संस्थानों में से एक था, जिन्हें स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप मिला था। यह पारम्परिक माइक्रोस्कोप से अलग था क्योंकि यह किसी भी नमूने का त्रिआयामी दृश्य प्रदान करता था। यूजीन व्हाइट पेन स्टेट यूनिवर्सिटी में एक पदार्थ वैज्ञानिक थे और उन्हें इस बेहद महत्वपूर्ण और दुर्लभ तकनीक को चलाने की ज़िम्मेदारी मिली थी। वेबर को कोरल के कंकाल देखने की जिज्ञासा हुई, इसलिए उन्होंने व्हाइट से इसे स्कैनिंग इलेक्ट्रॉन माइक्रोस्कोप से देखने की अनुमति मांगी। स्वयं एक स्कूबा डाइवर होने के कारण, व्हाइट भी इस विचार से रोमांचित हो गए।

देशभर से लोग व्हाइट के पास अपने अलग-अलग पदार्थों का विश्लेषण करने के लिए लाते थे, लेकिन यह पहली बार था जब उन्हें किसी सामग्री में व्यक्तिगत रुचि थी। उन्होंने कई स्कैन किए और जो उन्होंने देखा, उसने उन्हें पूरी तरह चौंका दिया। कोरल कंकालों में आपस में जुड़े छिद्रों का एक नेटवर्क था – 'स्विस चीज़' की तरह, लेकिन कहीं अधिक छिद्र-युक्त। व्हाइट के व्यापक अनुभव के बावजूद, उन्होंने पहले कभी ऐसा कुछ नहीं देखा था। यह तो बिलकुल भी किसी मानव-निर्मित पदार्थ जैसा नहीं दिखता था।

एक मेडिकल छात्र की नई और

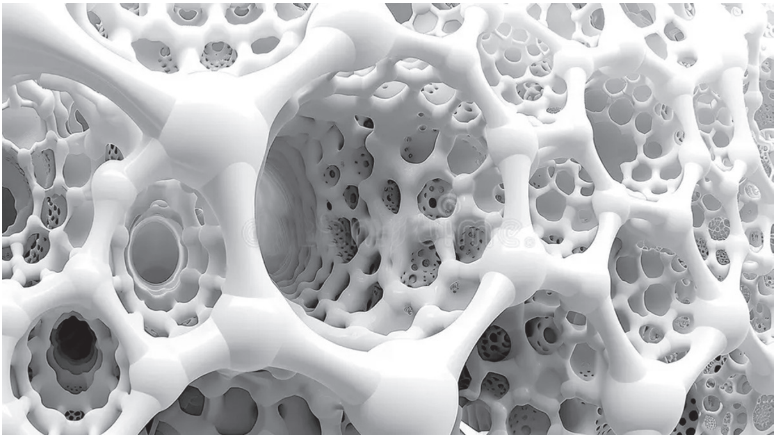

चित्र-2: कोरल की जटिल संरचना का एक क्लोज़-अप दृश्य इसकी नाज़ुक और छिद्रदार बनावट को दर्शाता है।

अलग दृष्टि से ही यह पहचानना सम्भव हुआ कि यह संरचना मानव हड्डी से कितनी मिलती-जुलती थी। 1971 में व्हाइट ने अपने भतीजे रॉडनी को, जो न्यूयॉर्क स्टेट यूनिवर्सिटी की अपस्टेट मेडिकल यूनिवर्सिटी में छात्र था, गर्मियों में अपनी प्रयोगशाला में काम करने के लिए बुलाया। तीनों ने मिलकर कोरल की संरचना का अध्ययन किया और उसके साँचे बनाए। यह और भी स्पष्ट हो गया कि प्रकृति ने हड्डी के प्रत्यारोपण के लिए एक ऐसी आदर्श संरचना (matrix) तैयार की थी, जिसकी नकल करने में इंजीनियर अब तक असफल रहे थे। चूँकि कोरल कंकाल के छिद्र एकसमान आकार के थे और पूरी तरह एक-दूसरे से जुड़े हुए थे, इसलिए यह नई रक्त वाहिकाओं और ऊतकों के विकसित होने के लिए आदर्श ढाँचा (scaffold) था, जिस पर वे हड्डी के प्रत्यारोपण के साथ बढ़ सकते थे। अपने नए विचार को लेकर उत्साहित होकर, उन्होंने 1972 में एक शोध-पत्र प्रकाशित किया, जिसमें सुझाव दिया गया कि कोरल बोन ग्राफ्ट सामग्री के एक अच्छे स्रोत के रूप में इस्तेमाल किया जा सकता है।

यह सब मेडिकल कम्युनिटी के लिए बहुत रोमांचक था, लेकिन इसमें एक बड़ी समस्या थी। कोरल के कंकाल कैल्शियम कार्बोनेट से बने होते हैं, और कैल्शियम कार्बोनेट घुलनशील होता है – यह पेट में अत्यधिक अम्ल की समस्या का आम इलाज भी है! इसका मतलब था कि इससे पहले कि हड्डी बढ़ना शुरू

करे, यह पदार्थ शरीर में टूट जाएगा। उन्हें ऐसा तरीका चाहिए था जिससे कोरल की रासायनिक संरचना बदली जा सके, लेकिन कोरल के कंकाल के बढ़ने के तरीके पर कोई असर न पड़े।

कोरल से बना अनोखा पदार्थ

इसी समय रसायनविद डेला रॉय इस परियोजना से जुड़ीं। एक जादूगर की तरह, रॉय ने कोरल को एक फॉस्फेट घोल में रखा और फिर उसे उच्च दबाव पर गर्म किया। इस प्रक्रिया ने कैल्शियम कार्बोनेट को कैल्शियम फॉस्फेट में बदल दिया, जो मानव हड्डियों में पाया जाने वाला खनिज है, और यह बदलाव संरचना को बदले बिना किया गया। इस नए पदार्थ का नाम कोरलाइन हाइड्रॉक्सी-एपेटाइट रखा गया और मेडिकल कम्युनिटी ने इसे उत्साहपूर्वक अपनाया। यह न केवल हड्डी के विकास के लिए एक उत्कृष्ट आधार बना, बल्कि पशुओं और मनुष्यों पर किए गए अध्ययनों में इसके बहुत ही कम नकारात्मक प्रभाव देखे गए। आज इस पदार्थ का उपयोग दसियों हज़ार मरीज़ों के बोन ग्राफ्ट में किया जा चुका है, जिसमें दन्त प्रत्यारोपण से लेकर रीढ़ की हड्डियों को जोड़ने (स्पाइनल फ्यूज़न) तक के उपचार शामिल हैं।

* * *

1668 में कुत्ते की खोपड़ी से शुरू हुआ एक निराशाजनक प्रयास आज आधुनिक चिकित्सा में समुद्री जीवन के सबसे रचनात्मक उपयोगों में से एक बन चुका है। प्रकृति पहले ही एक आदर्श संरचना बना चुकी थी; बस, कुछ जिज्ञासु दिमागों, स्कूबा गोताखोरों से लेकर सर्जनों तक, को इसे पहचानने की देर थी।

कार्ली ऐनी यॉर्क: वर्तमान में लेनॉयर-राइन यूनिवर्सिटी में एसोसिएट प्रोफेसर हैं। उन्होंने ओल्ड डोमिनियन यूनिवर्सिटी से पारिस्थितिक अध्ययन में पीएच.डी. की है। वे बच्चों के लिए विज्ञान पर आधारित दो नॉन-फिक्शन पुस्तकों, *A Day in the Life: Horses* और *Queens of the Jungle* की लेखिका भी हैं। नॉर्थ कैरोलिना में रहती हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: निधि सोलंकी: शिक्षा के क्षेत्र में 12 वर्षों से अधिक समय तक कार्य किया है और वे मुख्य रूप से भौतिक विज्ञान की शिक्षिका रही हैं। उन्हें बच्चों के साथ जुड़ना बहुत पसन्द है और पेड़ों तथा बादलों के बीच रहकर उन्हें आनन्द की अनुभूति होती है। वर्तमान में वे बैंगलोर स्थित Sparkling Mindz Global School में भौतिक विज्ञान पढ़ाने के साथ-साथ Psychodynamic Psychotherapy की पढ़ाई भी कर रही हैं।

यह कार्ली ऐनी यॉर्क की किताब *The Salmon Cannon and the Levitating Frog: And Other Serious Discoveries of Silly Science* से लिया गया अंश है।

यह अंश *Nautilus* के अंक 29 जून, 2025 से साभार।

कार्बन यौगिकों में सम-अवयवता उर्फ आइसोमरिज़्म

उमा सुधीर

भले ही सोने के दाम नई ऊँचाइयों को छू रहे हों, चाहे यूरेनियम और मेरे नाम का पहला अक्षर एक ही होने की वजह से कुछ लगाव हो, मगर मेरा पसन्दीदा तत्व सदैव कार्बन ही रहेगा। क्यों? क्योंकि यौगिकों के लिए कार्बन का वही स्थान है जो गीतों के लिए आशा भोसले का – व्यापक और बहुमुखी!

कार्बन के हज़ारों-लाखों यौगिक हैं, और अनगिनत सम्भावित यौगिक जिन्हें बस इन्तज़ार है कि कोई उन्हें बनाए। ये सारे यौगिक इसलिए मुमकिन हैं क्योंकि न सिर्फ कार्बन चतु:संयोजी (टेट्रावेलेंट) है, बल्कि इसलिए भी कि वह एक छोटा परमाणु है। यह लगभग सारे सामान्य तत्वों के साथ मज़बूत बन्ध बना सकता है। और तो और, कार्बन खुद के साथ भी बन्ध बना पाता है। इस लेख में मैं उन कार्बन यौगिकों पर ध्यान दूँगी जिनका अणु सूत्र एक ही होने के बावजूद गुणधर्म अलग-अलग होते हैं। इस गुण को सम-अवयवता (isomerism) कहते हैं। यह सिर्फ कार्बन का अनोखा गुण नहीं है, लेकिन कार्बन इसका प्रदर्शन इन्तहा तक करता है।

कार्बन के यौगिकों में सम-अवयवता कई किस्म की होती है, जैसे

क) कार्बन श्रृंखला अलग-अलग हो सकती है – अणु सूत्र C_4H_{10} हो तो वह यौगिक CH_3-CH_2-CH_2-CH_3 भी हो सकता है या CH_3-CH-$(CH_3)_2$ भी हो सकता है। और यौगिक में कार्बन परमाणुओं की संख्या बढ़ने के साथ इन श्रृंखला सम-अवयवियों की संख्या भी बढ़ती जाती है।

ख) क्रियात्मक समूह अलग-अलग स्थान पर हो सकते हैं - CH_3-CH_2-CH_2OH या CH_3-CHOH-CH_3

ग) क्रियात्मक समूह भी अलग-अलग हो सकते हैं - CH_3-CH_2OH (एक अल्कोहल) या CH_3-O-CH_3 (ईथर); और

घ) एकसमान कार्बन श्रृंखला और एक-से क्रियात्मक समूह, एक-से स्थानों पर होने के बाद भी इन क्रियात्मक समूह की स्थानिक (स्पेशियल) जमावट अलग-अलग हो, तो स्टीरियोआइसोमर्स (त्रीविम सम-अवयवी) बन जाते हैं।

और चूँकि त्रीविम सम-अवयवियों की जैविक क्रियाएँ एकदम अलग-अलग होती

हैं, इसलिए यहाँ मैं इन्हीं की चर्चा करूँगी। एक कारण यह भी है कि बाकी किस्म के सम-अवयवियों की चर्चा उच्च और उच्चतर स्कूली पाठ्यक्रमों में काफी विस्तार से की ही जाती है। और एक बात यह भी है कि लेख छोटे और मज़ेदार होने चाहिए! यहाँ यह कहना लाज़मी है कि त्रीविम सम-अवयवता भी कार्बन यौगिकों तक सीमित नहीं है। बाकी को भी ज़रूर देखिएगा, वे भी कम दिलचस्प नहीं हैं। आगे बढ़ने से पहले कृपया कार्बन यौगिकों को दर्शाने की परिपाटियों के बारे में बॉक्स-1 को ज़रूर देख लें।

बॉक्स-1: कार्बन यौगिक की रचना दर्शाने के विभिन्न तरीके

हमने कार्बन परमाणुओं को एक लाइन में लिखने की साधारण-सी विधि का उपयोग तो कर ही लिया है – इसमें किसी कार्बन परमाणु से जुड़े समूहों को उसके बाद लिखा जाता है और डैश (लाइनें) कार्बन परमाणुओं के बीच बन्ध के द्योतक होते हैं।

यदि किसी यौगिक में दो कार्बन परमाणुओं के बीच दोहरा बन्ध है तो उसे उन दो कार्बन परमाणुओं के बीच दोहरी रेखा से दर्शाया जाता है, जैसे प्रोपीन के लिए CH_3-CH=CH_2

इसे और भी सरल किया जा सकता है यदि हम कार्बन श्रृंखला को एक ज़िग-ज़ैग रेखा के रूप में दर्शाएँ, जिसमें प्रत्येक कार्बन परमाणु की संयोजकता को सन्तुष्ट करने के लिए ज़रूरी हायड्रोजन परमाणुओं की संख्या और इस लाइन के प्रत्येक मोड़ पर एक कार्बन परमाणु की उपस्थिति मानकर चलेंगे। इस तरीके का उपयोग आम तौर पर लम्बी श्रृंखला वाले यौगिकों को दर्शाने के लिए किया जाता है, जिनमें एकाध प्रतिस्थापी (substituents) हों। जैसे, ओलिक एसिड है $C_8H_{17}CH{=}CH(CH_2)_7COOH$ और इसे चित्र-1 में दर्शाया गया है। दोहरे बन्ध के दोनों ओर लम्बी-लम्बी कार्बन श्रृंखलाओं की स्थिति पर ध्यान दें। इसके बारे में आगे और बात करेंगे।

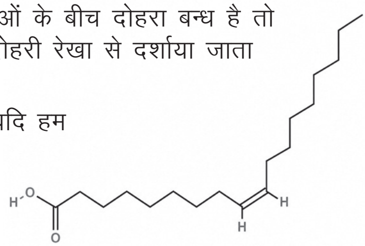

चित्र-1: *ओलिक एसिड*

चित्र - इंटरनेट से साभार।

जब किसी कार्बन यौगिक में कई सारे प्रतिस्थापी होते हैं, तो उन्हें एक लाइन में लिखना भ्रामक तो हो ही सकता है, इससे आपको त्रि-आयामी जगह में उन समूहों की जमावट का अन्दाज़ा भी नहीं मिलेगा – याद कीजिए, सन्तृप्त कार्बन परमाणु के चार बन्ध एक चतुष्फलक (tetrahedron) के आकार में होते हैं। इस चतुष्फलकीय आकार को दर्शाने के लिए परिपाटी यह है कि चार में से तीन समूहों को कागज़ के तल से बाहर निकलता दिखाया जाए और चौथे समूह को तल से पीछे की ओर दिखाया जाए (कार्बन परमाणु उस तल में होगा)। चित्र-2 देखिए। कागज़ के तल

से बाहर आते बन्धों को ठोस फच्चरों (solid wedges) के रूप में और पीछे की ओर जाते बन्ध को टूटी रेखा द्वारा दर्शाया जाता है।

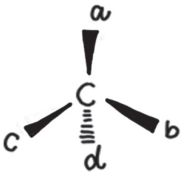

चित्र-2: चार अलग-अलग समूहों - a, b, c और d - के साथ बन्ध बनाता कार्बन परमाणु। इसके अलावा फिशर प्रक्षेपण शर्करा और अमीनो एसिड के लिए आम तौर पर उपयोग किया जाता है। इसकी चर्चा और कभी।

जब आपको किसी यौगिक में अलग-अलग प्रतिस्थापियों वाले एक से अधिक कार्बन परमाणु दर्शाने हों, तो इसके लिए दो अलग-अलग तरीकों का इस्तेमाल किया जाता है - सॉहॉर्स प्रक्षेपण (क्योंकि यह बढ़ई द्वारा इस्तेमाल किए जाने वाले उपकरण सॉहॉर्स जैसा दिखता है) और न्यूमैन प्रक्षेपण। चित्र-3 में एक काल्पनिक यौगिक Cabc-Cxyz को दोनों तरह से दर्शाया गया है।

चित्र-3: (क) यौगिक Cabc-Cxyz के सॉहॉर्स तथा (ख) न्यूमैन प्रक्षेपण; परिपाटी यह है कि समूह a, b और c से जुड़ा कार्बन परमाणु आगे की ओर होता है जबकि x, y और z समूहों से जुड़ा कार्बन परमाणु पीछे की ओर होता है।

यह बात ध्यान में रखें कि जब दो परमाणुओं के बीच एकल बन्ध होता है, तो मुक्त घूर्णन सम्भव होता है। लिहाज़ा, चित्र-4 में यौगिक Cabc-Cxyz में विभिन्न उन्मुखीकरण (orientation) परस्पर तुल्य हैं।

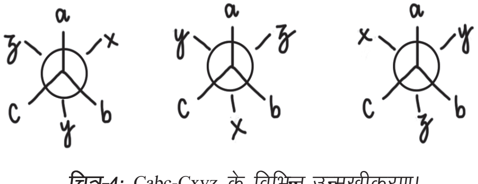

चित्र-4: Cabc-Cxyz के विभिन्न उन्मुखीकरण।

त्रिविम सम-अवयवता

त्रिविम सम-अवयवी यौगिकों की एकदम रूखी परिभाषा देनी हो, तो कहेंगे कि वे ऐसे अणु होते हैं जिनका अणु सूत्र एक ही होता है और परमाणुओं के बन्धन भी एक-से होते हैं लेकिन अलग-अलग स्थानिक जमावट (spatial arrangement) होती है। अर्थात् परमाणु वही हैं, एक ही क्रम में जुड़े हैं लेकिन उनका उन्मुखीकरण अलग-अलग है। त्रिविम सम-अवयवी दो तरह के हो सकते हैं - एनंशियोमर (दर्पण प्रतिबिम्ब, जिन्हें एक-दूसरे पर अध्यारोपित न किया जा सके) और ज्यामितीय सम-अवयवी।

इस पूरे लेख में हम इस बात पर चर्चा करेंगे कि इन शब्दों का अर्थ क्या है और ये जीवन को किस तरह प्रभावित करते हैं। ये दो तरह के सम-अवयवी अकार्बनिक यौगिकों में भी देखने को मिलते हैं, लेकिन यहाँ हम कार्बन यौगिकों पर ध्यान केन्द्रित करेंगे।

ज्यामितीय समावयवी

ज्यामितीय सम-अवयवता (geometric isomerism) पैदा होती है बाधित घूर्णन की वजह से। चूँकि खुली शृंखला वाले यौगिकों में कार्बन परमाणुओं के बीच एकल बन्ध घूर्णन को बाधित नहीं करते, इसलिए ज्यामितीय सम-अवयवता आम तौर पर प्रतिस्थापी युक्त अल्कीन्स में देखी जाती है। एक उदाहरण देती हूँ: CHCl=CHCl, चित्र-5 में इसके दो सम्भावित ज्यामितीय सम-अवयवी दिखाए गए हैं।

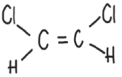
सिस

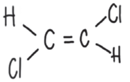
ट्रांस

चित्र-5: *सिस व ट्रांस 1,2-डाईक्लोरोएथीन। जब दोनों हायड्रोजन परमाणु दोहरे बन्ध के एक ही ओर होते हैं तब उसे 'सिस' कहा जाता है, अन्यथा 'ट्रांस'। तो, पीछे जाकर चित्र-1 को देखिए और बताइए कि दर्शाया गया यौगिक सिस ओलिक एसिड है या ट्रांस ओलिक एसिड?*

जब एल्कीन में कम क्रियात्मक समूह होते हैं, तो *सिस* और *ट्रांस* के आधार पर अणु की संरचना का वर्णन किया जा सकता है। लेकिन जब दो से ज़्यादा और अलग-अलग क्रियात्मक समूह उपस्थित हों, तो पहले प्रत्येक क्रियात्मक समूह की प्राथमिकता तय की जाती है - दोहरे बन्ध वाले कार्बन परमाणु से जुड़े परमाणु की परमाणु संख्या जितनी अधिक होगी, उसकी प्राथमिकता भी उतनी ही अधिक मानी जाती है। तब यदि उच्चतर प्राथमिकता वाले समूह दोहरे बन्ध के एक ही तरफ हों तो उन्हें *Z* इंगित करते हैं, अन्यथा *E*. 1,2-डाईक्लोरोएथीन के मामले में *सिस* और *ट्रांस* का फैसला आसान है। लेकिन

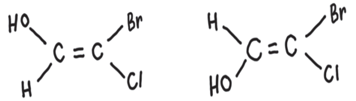

चित्र-6: कौन-सा E और कौन-सा Z?

क्या आप चित्र-6 में दर्शाए गए ज्यामितीय सम-अवयवियों में से तय कर सकते हैं कि कौन-सा *सिस* है और कौन-सा *ट्रांस?*

हो सकता है कि यह एक मामूली-सा अन्तर लगे कि कार्बन-कार्बन दोहरे बन्ध पर क्रियात्मक समूह एक ओर हैं या नहीं। लेकिन ऐसे दो सम-अवयवियों के बीच तमाम किस्म के अन्तर देखने को मिलते हैं – भौतिक गुणों में भी और रासायनिक क्रियाशीलता में भी।

सबसे पहले तो चूँकि इन अणुओं की आकृतियाँ अलग-अलग होती हैं, इसलिए इस बात पर असर पड़ता है कि ठोस अवस्था में ये कितने पास-पास पैक हो सकते हैं। तो इनके गलनांक भी अलग-अलग होंगे। प्रतिस्थापियों की प्रकृति के अनुसार, द्विध्रुव आघूर्ण (dipole moments) अलग-अलग हो सकते हैं, जिसकी वजह से उनके क्वथनांक भी अलग-अलग हो सकते हैं। और तो और, कुछ मामलों में, खासकर एंज़ाइम निर्देशित अभिक्रियाओं में, दोनों सम-अवयवियों की क्रियाशीलता और/या अभिक्रिया की गति भी अलग-अलग हो सकती है।

बॉक्स-2: वसा – *ट्रांस* बनाम *सिस*

अधिकांश सन्तृप्त वसाएँ ठोस होती हैं जबकि कई सारे बहु-असन्तृप्त वसा वनस्पति तेल होते हैं। जब इन बहु-असन्तृप्त वसाओं (एक से अधिक दोहरे बन्ध से युक्त) का हायड्रोजनीकरण किया जाता है, तो ठोस वसाएँ बनती हैं जिनका खाद्य उद्योग में काफी इस्तेमाल किया जाता है। दिलचस्प बात है कि कृत्रिम रूप से बनाई गई अधिकांश वसाओं में *ट्रांस* दोहरे बन्ध होते हैं जबकि अधिकांश प्राकृतिक असन्तृप्त वसाओं में *सिस* दोहरे बन्ध होते हैं। अध्ययनों से पता चला है कि *ट्रांस* वसा के उपभोग से हृदय रोग, स्ट्रोक और मधुमेह का खतरा अधिक होता है। अर्थात् किसी कार्बन यौगिक में ज्यामितीय सम-अवयवता का सम्बन्ध उसकी जैविक क्रिया से हो सकता है। (यहाँ बात आंशिक हायड्रोजनीकरण की हुई है। क्योंकि यदि पूर्ण हायड्रोजनीकरण किया जाएगा, तो *सिस-ट्रांस* का सवाल ही खत्म हो जाएगा।)

दर्पण प्रतिबिम्ब सम-अवयवता (Enantiomerism)

एनंशियोमरिज़्म का सम्बन्ध प्रकाशिक सक्रियता और कायरल कार्बन परमाणुओं से है (बॉक्स 3, 4 एवं 5 देखें – प्रकाशिक सक्रियता, कोई दर्पण प्रतिबिम्ब कब मूल वस्तु के जैसा होता है और कायरल कार्बन)। चतुष्फलकीय कार्बन परमाणु के आसपास चार क्रियात्मक समूहों की जमावट में हल्का-सा

परिवर्तन कोई बड़ा अन्तर नहीं लगता। और वास्तव में भी प्रकाशिक सम-अवयवी कोई और अन्तर नहीं दर्शाते – वे तो सिर्फ ध्रुवीकृत प्रकाश के तल को अलग-अलग दिशा में विचलित करते हैं। यह ज्यामितीय सम-अवयवियों से अलग है जिनके भौतिक व रासायनिक गुणधर्मों, दोनों में अन्तर आ जाता है। और तो और, यदि साधारण रासायनिक अभिकर्मकों से पाला पड़े, तो एनंशियोमर्स की अभिक्रियाएँ और क्रियाशीलता भी समान रहती हैं। लेकिन हैरत की बात तब होती है जब अभिकर्मक स्वयं प्रकाशिक सक्रिय हों या उनमें कायरल केन्द्र स्थित हों। यह चीज़ सजीव तंत्रों में देखी जाती है।

कारण जो भी रहा हो, मगर जब आदिम धरती पर जीवन की पहली शुरुआत हुई थी, तब कार्बनिक यौगिकों के एक मिले-जुले शोरबे में से कुछ ही यौगिक चुने गए थे और उनके प्रकाशिक सम-अवयवी खारिज कर दिए गए थे। जीवन के विकास के साथ अधिक-से-अधिक जटिल जीव उभरे, लेकिन बुनियादी जैव-रसायन नहीं बदला और हम देखते हैं कि सजीव तंत्र ज़्यादातर D-शर्कराओं और L-अमीनो अम्लों का उपयोग करते हैं (इन संकेतों का अर्थ बॉक्स-6 में देखें)।

बॉक्स-3: प्रकाशीय सक्रियता

क्वाट्र्ज़ वह पहला पदार्थ था जिसमें प्रकाशिक सक्रियता देखी गई थी – क्वाट्र्ज़ क्रिस्टल को ध्रुवीकृत प्रकाश के मार्ग में रखने पर ध्रुवण का तल क्लॉकवाइस या एंटीक्लॉकवाइस दिशा में घूम गया। जल्दी ही, इस तरह की प्रकाशिक सक्रियता द्रवों, विभिन्न यौगिकों के विलयनों और वाष्प अवस्था में भी देखी गई। प्राकृतिक रूप से पाए जाने वाले कई कार्बनिक यौगिक भी प्रकाशिक रूप से सक्रिय पाए गए थे, लेकिन प्रयोगशाला में संश्लेषण के दौरान जो उत्पाद मिलते थे, वे प्रकाशिक सक्रियता नहीं दर्शाते थे। उदाहरण के लिए, प्राकृतिक रूप से पाया जाने वाला टार्टरिक एसिड प्रकाशिक रूप से सक्रिय होता है लेकिन संश्लेषित टार्टरिक एसिड नहीं होता। बहरहाल, लुई पाश्चर ने टार्टरिक एसिड का सोडियम अमोनियम लवण बनाया जिसने घुलित अवस्था में कोई प्रकाशिक सक्रियता नहीं दर्शाई, लेकिन जब उसके रवे बनाए गए तो उन्होंने देखा कि रवे दो प्रकार के थे। ये दोनों एक-दूसरे के दर्पण प्रतिबिम्ब थे और पाश्चर इन दो किस्म के रवों को अलग-अलग कर पाए थे। जब इन अलग-अलग किए गए रवों को अलग-अलग घोला गया तो दोनों घोलों ने ध्रुवीकृत प्रकाश को अलग-अलग दिशाओं में बराबर-बराबर मोड़ा।

प्रयोगशाला में की गई अधिकांश अभिक्रियाओं में दो सम्भव एनंशियोमर्स का मिश्रण बनता है और दोनों बराबर मात्रा में बनते हैं। इसे रेसमिक मिश्रण कहते हैं क्योंकि ये ध्रुवीकृत प्रकाश के तल को नहीं मोड़ते। आश्चर्य की बात तो यह कि सजीव तंत्र अधिकांशत: इन दो सम्भव एनंशियोमर्स में से ज़्यादातर एक का ही उपयोग करते हैं, और एक ही बनाते हैं। और अब प्रयोगशालाओं में एक ही तरह का प्रकाशिक सक्रिय उत्पाद बनाने के लिए एंज़ाइम निर्देशित अभिक्रियाओं का उपयोग किया जा रहा है।

तो कोशिकाएँ ऊर्जा उत्पादन के लिए D-ग्लूकोज़ का उपयोग करती हैं, आरएनए तथा डीएनए के अणुओं में रायबोस तथा डीऑक्सीरायबोस D समावयवी होते हैं और स्टार्च, ग्लायकोजेन, सेल्यूलोज़ तथा कायटिन जैसे पोलीसेकराइड्स भी D समावयवियों से बने होते हैं। एक विचार यह है कि D समावयवियों को शुरुआती प्राथमिकता देने का कारण यह हो सकता है कि वे ज़्यादा स्थिर होते हैं। हालाँकि कोशिकाओं द्वारा कभी-कभार L समावयवियों

बॉक्स-4: कोई दर्पण प्रतिबिम्ब कब मूल वस्तु के जैसा होता है?

हमारी त्रिआयामी दुनिया में प्रकाशिक सम-अवयवता का सम्बन्ध किसी वस्तु और उसके दर्पण प्रतिबिम्ब से है जिसे वस्तु पर अध्यारोपित नहीं किया जा सकता। दूसरे शब्दों में, वस्तु असममित है। चलिए, किसी सममित वस्तु, जैसे A से शुरू करते हैं। यदि आप इसके बाजू में एक दर्पण रख दें तो प्रतिबिम्ब इसके समान होगा (देखें चित्र-7 'क')।

क्या होगा यदि आप दर्पण को इसके नीचे रख दें? आप सोचेंगे कि शायद अब प्रतिबिम्ब भिन्न होगा (देखें चित्र-7 'ख')।

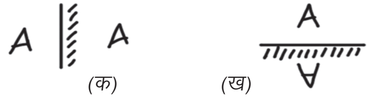

चित्र-7

लेकिन ज़रा कल्पना कीजिए कि आप प्रतिबिम्ब को 180 अंश से घुमा देते हैं। आप पाएँगे कि आपको वही अक्षर A मिल जाता है। यानी अक्षर A और उसका प्रतिबिम्ब हूबहू एक-समान हैं।

यदि आप इस अक्षर के बीच से एक रेखा खींच दें, तो पाएँगे कि बायाँ और दायाँ हिस्सा एक-दूसरे के दर्पण प्रतिबिम्ब हैं। इसे सममिति का तल कहते हैं और अक्षर A सममित है।

चित्र-8

अक्षर a के बारे में क्या विचार है? यदि आप अक्षर a के बाजू में एक दर्पण रख दें, तो दर्पण में बना प्रतिबिम्ब अलग दिखता है। चाहे जितना घुमाएँ मगर मूल अक्षर जैसा नहीं बना पाएँगे। तो क्या अक्षर a असममित है? दरअसल, ऐसा नहीं है क्योंकि इसमें सममिती की एक अक्ष है। यदि आप अक्षर के बीचोंबीच एक पतली छड़ घुसाएँ (चित्र-8 के अनुसार), और उसे घुमा दें तो आपको उसका दर्पण प्रतिबिम्ब प्राप्त होगा। या चाहें तो आप इस अक्षर को काँच की एक स्लाइड पर लिख दें और उसे दूसरी ओर से देखें, यानी आप वस्तु को पलटा दें, तो आपको दर्पण प्रतिबिम्ब मिलेगा।

यदि आप सचमुच की असममिती देखना चाहते हैं, तो कहीं दूर जाने की ज़रूरत नहीं है। अपने हाथों को देखिए। आपका बायाँ हाथ न सिर्फ दाएँ हाथ का दर्पण प्रतिबिम्ब है, बल्कि आप अपने दाएँ हाथ को कितना भी मरोड़ें, घुमाएँ या पलटें, उसे आप अपने बाएँ हाथ जैसा नहीं बना पाएँगे।

और कायरल कार्बन परमाणु से बने यौगिकों में असममिती का यही गुण होता है।

का उपयोग किया जाता है, लेकिन इन कार्बोहायड्रेट के प्रसंस्करण (processing) के लिए प्रयुक्त जैव-रासायनिक मार्ग सर्वथा अलग होते हैं।

सामान्य प्रोटीन्स के निर्माण में 20 मानक अमीनो अम्लों का उपयोग होता है। और एक ग्लाइसिन को छोड़कर शेष सभी L-एनंशियोमर्स होते हैं। इसका मतलब हुआ कि जब अमीनो अम्लों की श्रृंखला बनती है, तो क्रियात्मक समूहों का उन्मुखीकरण श्रृंखलाओं के कतिपय कंफॉर्मेशन (conformations) को स्थायित्व प्रदान करता है। इस वजह से श्रृंखलाएँ एक निश्चित तरह से तह की जाती हैं और अन्तिम प्रोटीन को एक निश्चित आकार प्रदान करती हैं। अब चूँकि सजीव तंत्रों में कोशिकाओं के अन्दर अभिक्रियाओं में एंज़ाइम की मध्यस्थता होती है, और सारे एंज़ाइम प्रोटीन ही होते हैं, इसलिए अभिकर्मकों के क्रियात्मक समूह भी एक खास उन्मुखीकरण में होने चाहिए ताकि वे प्रोटीन के साथ फिट हो सकें। कुल मिलाकर, परिणाम यह होता है कि जैव रासायनिक अभिक्रियाएँ ऐसे प्रारम्भिक पदार्थों के साथ होती हैं, जो स्वयं असममित (प्रकाशिक रूप से सक्रिय) हैं और उत्पाद भी अक्सर प्रकाशिक सक्रिय होते हैं।

बॉक्स-5: कायरल कार्बन

पूर्ण सन्तृप्त कार्बन परमाणुओं की ज्यामिती को चतुष्फलक के रूप में निर्धारित करने का काम ऐसे अल्केन्स, जिनमें विभिन्न संख्याओं में प्रतिस्थापी थे, के कई सारे ज्ञात सम-अवयवियों के आधार पर किया गया था। यह तो पता था कि मीथेन के चारों कार्बन-हायड्रोजन बन्ध परस्पर तुल्य हैं। यह इस बात से मेल खाता था कि या तो अणु का आकार एक-तलीय वर्गाकार (चित्र-9 ‘क’) हो या चतुष्फलक (चित्र-9 ‘ख’) हो।

दोनों ही मामलों में कार्बन परमाणु आकृति के मध्य में होगा। या यह भी हो सकता है कि यह एक वर्गाकार पिरामिड हो जिसमें कार्बन परमाणु शेष परमाणुओं के तल से ऊपर हो (चित्र-9 ‘ग’)।

आप ऐसे किसी अणु में सम-अवयवियों की उम्मीद नहीं करेंगे जिसमें मात्र एक प्रतिस्थापी हो, या कार्बन से जुड़े तीन समूह समान हों, जैसा कि क्लोरोफॉर्म में है (चित्र-10 ‘क’, ‘ख’ और ‘ग’)।

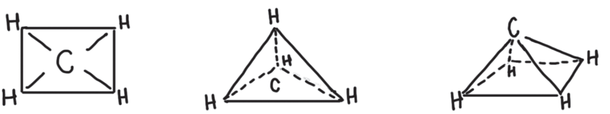

(क) *(ख)* *(ग)*

चित्र-9

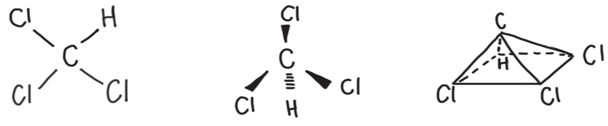

(क) (ख) (ग)

चित्र-10

यदि केन्द्रीय कार्बन परमाणु पर दो अलग-अलग प्रतिस्थापी हों (जैसे कि डाईक्लोरोमीथेन में होता है) तब आप निम्नलिखित स्थितियों में दो-दो समावयवियों की अपेक्षा करेंगे-

- जब अणु का आकार समतल वर्गाकार हो, या

- वर्गाकार पिरामिड हो

(चित्र-11 'क' और 'ख' तथा चित्र-12 'क' और 'ख')।

चित्र-11

(क) (ख)

चित्र-12

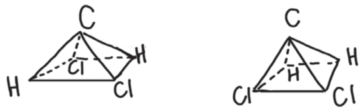

(क) (ख)

लेकिन यदि अणु चतुष्फलक आकृति का हुआ तो आप सिर्फ एक सम-अवयवी की अपेक्षा करेंगे। और वास्तव में इस यौगिक का एक ही सम-अवयवी ज्ञात है।

और आखरी मामला यह होगा जब कार्बन परमाणु चार अलग क्रियात्मक समूहों से जुड़ा हो। इस स्थिति में वर्गाकार समतल अणु में केन्द्रीय कार्बन के आसपास इन चार क्रियात्मक समूहों की तीन अलग-अलग व्यवस्थाएँ सम्भव होंगी (चित्र-13 'क', 'ख' व 'ग')। यदि अणु वर्गाकार पिरामिड हुआ, तो इन परमाणुओं की छः अलग-अलग व्यवस्थाएँ सम्भव हैं - तीन व्यवस्थाएँ चित्र-14 में दिखाई गई हैं। और इनमें से प्रत्येक का दर्पण प्रतिबिम्ब सम्भव होगा (आप स्वयं इन्हें चित्रित करने की कोशिश कीजिए)। और चतुष्फलकीय कार्बन सिर्फ दो सम-अवयवियों की इज़ाजत देगा और यही देखा गया है। लिहाज़ा, त्रिविम रसायन (स्टीरियोकेमिस्ट्री) एक प्रमाण है कि सन्तृप्त कार्बन परमाणु के चार बन्ध एक चतुष्फलक की आकृति में होते हैं।

जैसा कि आप देख सकते हैं, यदि किसी कार्बनिक यौगिक में कायरल कार्बन है तो दो सम-अवयवी सम्भव हैं जो एक-दूसरे के दर्पण प्रतिबिम्ब होंगे। अधिकांश प्रकाशिक सक्रिय कार्बनिक यौगिकों में कम-से-कम एक कायरल कार्बन होता है। यदि किसी

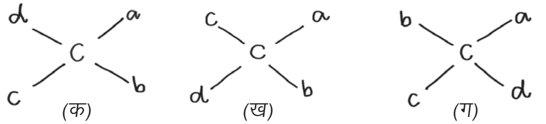

चित्र-13

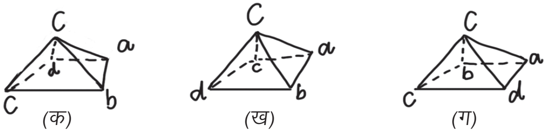

चित्र-14

यौगिक में एक से अधिक कायरल कार्बन हों तो सम्भव है कि वह प्रकाशिक सक्रिय न हो। इसका एक उदाहरण मीसो-टार्टरिक एसिड है। यह प्रकाशित अक्रिय है क्योंकि इसमें सममिती का एक तल होता है (चित्र-15)।

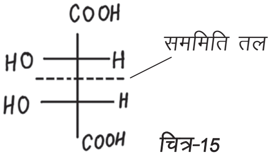

चित्र-15

प्रत्येक मोनोमर के मात्र एक इनंशियोमर से शुरू करके जैविक मैक्रोमॉलीक्यूल स्वयं भी असममित बनता है। उदाहरण के लिए, दो सूत्रों वाला डीएनए दाईं ओर घूमती कुण्डली के रूप में ऐंठा होता है। और एनंशियोमर्स की जैविक क्रियाओं में फर्क होता है, जिसके चलते उनका स्वाद अलग-अलग हो सकता है (अमीनो अम्लों के प्रकाशिक सक्रिय समावयवी) या गन्ध अलग-अलग हो सकती है (कार्वोन के दो एनंशियोमर्स पहाड़ी पुदीना और शाहजीरा को अलग-अलग गन्ध देते हैं)।

बॉक्स-6: कायरल कार्बन का विवरण कैसे दें?

कोई अणु (वाष्प, तरल, ठोस या घुलित अवस्था में) ध्रुवीकृत प्रकाश के तल को बाईं ओर घुमाता है (यानी एंटीक्लॉकवाइज़) या दाईं ओर घुमाता है (यानी क्लॉकवाइज़), इस आधार पर उसे *l*/- या *d*/+ कहा जाता है। यहाँ *l* लीवो (laevo) का प्रथम अक्षर है, लैटिन में इसका मतलब है, बायाँ। *d* डेक्सट्रो (dextro) का प्रथम अक्षर है जिसका लैटिन में अर्थ होता है, दायाँ।

लेकिन इस विवरण से हमें कायरल परमाणु के आसपास विभिन्न समूहों की व्यवस्था के बारे में कुछ पता नहीं चलता। इसके लिए *R* व *S* प्रणाली का उपयोग किया जाता है। यह प्रणाली कान-इंगोल्ड-प्रीलॉग नियमों पर आधारित है। यहाँ प्रथमाक्षर (*R* व *S*) रेक्टस (rectus) तथा सिनिस्टर (sinister) के द्योतक हैं। ये भी लैटिन से लिए गए हैं। रेक्टस यानी दायाँ (क्लॉकवाइज़) तथा सिनिस्टर यानी बायाँ (एंटीक्लॉकवाइज़)। ज्यामितीय सम-अवयवियों के निर्धारण के सन्दर्भ में जैसा किया था, वैसे ही कायरल कार्बन से जुड़े समूहों को उनकी परमाणु संख्या के अनुसार

प्राथमिकता दी जाती है; सबसे ज़्यादा परमाणु संख्या वाले समूह को सर्वोच्च प्राथमिकता मिलती है। इसके बाद, सबसे कम प्राथमिकता वाले समूह को पीछे रखकर, आप सर्वोच्च प्राथमिकता से सबसे कम प्राथमिकता की ओर जाते हैं (चित्र-16 देखें)।

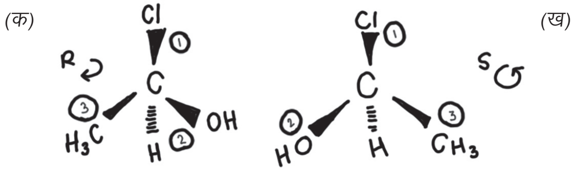

चित्र-16

यदि ऐसा करने पर आप क्लॉकवाइज़ दिशा में जाते हैं (चित्र-16 'क') तो उस अणु को *R* सम-अवयवी कहते हैं और यदि एंटीक्लॉकवाइज़ जाते हैं तो सम-अवयवी को *S* कहा जाता है।

किसी प्रकाशिक सम-अवयवी के *R* / *S* नामकरण से इस बात का पता नहीं चलता कि वह ध्रुवीकृत प्रकाश के तल को किस ओर विचलित करेगा। R या S निर्धारण से हमें कायरल कार्बन के आसपास समूहों की वास्तविक व्यवस्था का पता चलता है जबकि किसी समावयवी का *d* या *l* होना, उसकी ध्रुवीकृत प्रकाश के साथ अन्तर्क्रिया से पता चलता है।

इसके अलावा, कार्बोहायड्रेट तथा अमीनो एसिड्स को D या L इस आधार पर कहा जाता है कि उनमें ग्लिसरल्डीहाइड के सापेक्ष क्रियात्मक समूहों की व्यवस्था क्या है। तो, हमारी कोशिकाएँ D-ग्लूकोज़ को पचा लेती हैं जबकि L-ग्लूकोज़ उनके किसी काम का नहीं है।

तो, ज़ाहिर है, किसी कायरल कार्बन के आसपास विभिन्न समूहों की त्रिविम जमावट में छोटा-सा अन्तर प्रकाशिक सम-अवयवियों को जन्म दे सकता है। इसके असर अलग-अलग होते हैं, कभी-कभी अन्तर नाटकीय होते हैं। यह स्थिति कार्बन यौगिकों के अन्य किस्म के सम-अवयवियों से काफी ज़्यादा है। कार्बन यौगिक रोमांचक और दिलकश हैं, नहीं? और क्या कार्बन के प्रति मेरा प्रेम जायज़ नहीं है?!

उमा सुधीर: *एकलव्य* के साथ जुड़ी हैं। दो दशक से ज़्यादा से विज्ञान शिक्षण के क्षेत्र में काम कर रही हैं।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: सुशील जोशी: *एकलव्य* द्वारा संचालित स्रोत फीचर सेवा से जुड़े हैं। विज्ञान शिक्षण व लेखन में गहरी रुचि।

सभी चित्र: अदिति पुत्तिगे: सृष्टि इंस्टीट्यूट ऑफ आर्ट, डिज़ाइन एंड टेक्नोलॉजी से डिज़ाइन की पढ़ाई। वर्तमान में, रियाज़ अकादमी फॉर इलस्ट्रेटर्स में अध्ययनरत तथा बाल साहित्य और चित्रांकन के क्षेत्र में सक्रिय रुचि।

कमाल का कमाल

आमोद कारखानीस

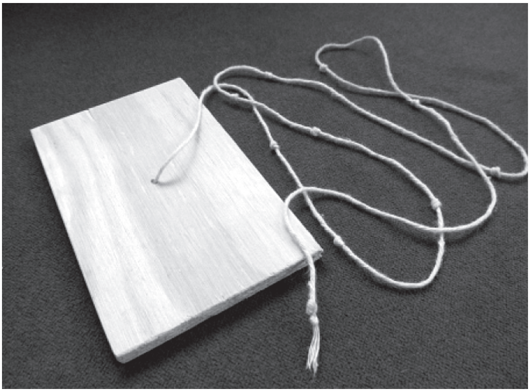

बचपन में जब स्कूलों की छुट्टियाँ लगती थीं, तब हम सब मामा के घर जाया करते थे। हमारा ननिहाल कोंकण में था। उस समय मुम्बई से कोंकण या गोवा जाने का सबसे सुविधाजनक तरीका मोटरबोट से समुद्र के रास्ते यात्रा करना था। मोटरबोट मुम्बई से चलने के बाद हर्णे, जयगढ़ जैसे बन्दरगाहों पर रुकती हुई अगले दिन पणजी पहुँचती थी।

हालाँकि, मोटरबोट बहुत गहरे समुद्र में नहीं जाती थी; वह अधिकांश तट के आसपास ही चलती थी। फिर भी चारों ओर जहाँ तक नज़र जाती, पानी-ही-पानी दिखाई देता था। ऐसे में मन में कई सवाल उठते थे - हम इस समय ठीक कहाँ हैं? किस दिशा में जा रहे हैं? और नाविकों को सही रास्ते का पता कैसे चलता होगा?

थोड़ा बड़ा होने पर मालूम हुआ कि मोटरबोट चलाने के लिए दिशा-सूचक यंत्र (कम्पास) और समुद्री नक्शों का सहारा लिया जाता है। लेकिन तब मन में एक और जिज्ञासा पैदा हुई कि इन आधुनिक तकनीकों के आविष्कार से पहले नाविक क्या करते होंगे?

तारों के सहारे समुद्री सफर

दुनिया के विभिन्न देशों के बीच समुद्री यात्रा और व्यापार प्राचीन काल से ही होते आए हैं। ऐसे ही एक समुद्री सफर का उल्लेख यूनानी कवि होमर के प्रसिद्ध महाकाव्य *ओडिसी* में मिलता है। इस महाकाव्य में कैलिप्सो

नामक अप्सरा नायक ओडीसियस को अपने द्वीप पर ले जाती है और उससे कहती है कि यदि वह उसके साथ रहेगा, तो उसे अमरत्व प्राप्त होगा।

लेकिन ओडीसियस का मन अपने घर लौटने के लिए व्याकुल रहता है। अन्ततः जब वह द्वीप छोड़कर वापस जाने का निश्चय करता है, तब कैलिप्सो उसे समुद्र में दिशा पहचानने का एक महत्वपूर्ण तरीका बताती है। वह कहती है, "नाव चलाते समय सप्तऋषि मण्डल को अपनी बाईं ओर रखना और कृतिका तथा स्वाती नक्षत्रों पर भी ध्यान देना।" इस प्रकार प्राचीन नाविक समुद्र में अपनी दिशा तय करने के लिए तारों और नक्षत्रों का सहारा लेते थे।

सप्तऋषि मण्डल को अपनी बाईं ओर रखने का अर्थ है कि यात्रा पूर्व दिशा की ओर करनी है। हालाँकि, इस विवरण के कुछ पहलुओं पर इतिहासकारों में मतभेद हैं, फिर भी यह बात तो तय है कि उस समय समुद्री यात्राओं के दौरान दिशा निर्धारित करने के लिए तारों और नक्षत्रों की स्थिति का सहारा लिया जाता था।

यूनानी (ग्रीक) नाविक मुख्यतः भूमध्य सागर में यात्रा करते थे। भूमध्य सागर की यात्राएँ अपेक्षाकृत कम जोखिम भरी होती थीं। यदि कभी सही दिशा का अनुमान न लग पाता या जहाज़ थोड़ा भटक भी जाता, तब भी यह समुद्र अपेक्षाकृत संकरा तथा चारों ओर से भूमि से घिरा होने के कारण कुछ ही दूरी पर ज़मीन दिखाई देने लगती थी।

इसके विपरीत, उस समय हिन्द महासागर को पार करना अत्यन्त साहस और कुशलता का कार्य माना जाता था। इस महासागर में यात्रा करने वाले नाविक भी दिशा निर्धारित करने के लिए तारों का सहारा लेते थे। वास्तव में, वे तारों का अवलोकन होमर के वर्णनों से भी अधिक सटीकता और सावधानी से करते थे। मानसूनी हवाओं का फायदा उठाते हुए अरब, मोज़ाम्बिक (अफ्रीका) और भारत के बीच समुद्री व्यापार होता था। उस काल की समुद्री यात्रा-कुशलताओं को समझने के लिए हमें लगभग ईस्वी सन् 100–200 के आसपास केरल की ओर दृष्टि डालनी होगी।

केरल की प्रमुख नदियों में पेरियार का विशेष स्थान है। समुद्र से उसके संगम स्थल (डेल्टा) का विस्तार और गहराई इतनी अधिक थी कि उस समय के बड़े-बड़े समुद्री जहाज़ भी नदी के भीतर तक आकर सुरक्षित रूप से लंगर डाल सकते थे। पेरियार के डेल्टा पर स्थित मुज़रिस नगर पूर्व और पश्चिम के बीच समुद्री व्यापार का एक महत्वपूर्ण केन्द्र था।

भारत के विभिन्न क्षेत्रों से हाथीदाँत, कलाकृतियाँ, सूती एवं रेशमी वस्त्र, तथा आसपास के क्षेत्रों में उत्पादित

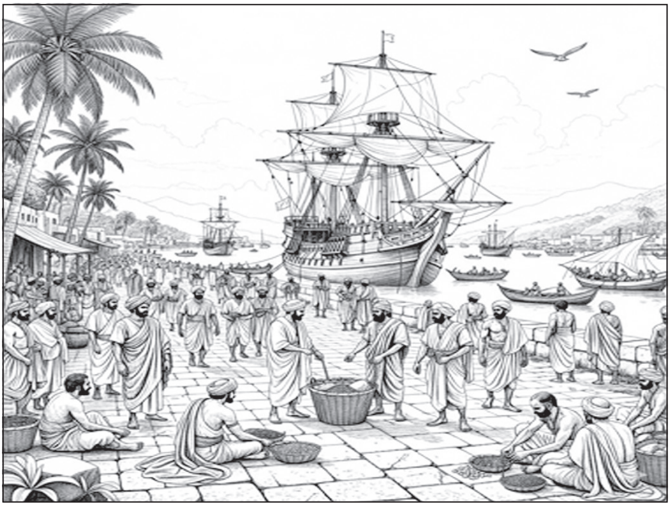

चित्र-1: मुज़रिस बन्दरगाह

काली मिर्च, दालचीनी और अन्य मसाले मुज़रिस लाए जाते थे। इसलिए इस नगर में देशी और विदेशी व्यापारियों तथा नाविकों का जमावड़ा लगा रहता था। अरब, इजिप्त, श्रीलंका और कम्बोडिया जैसे देशों के लिए मुज़रिस एक प्रमुख व्यापारिक केन्द्र था।

कमाल से दिशा का ज्ञान

मुज़रिस में अनेक व्यापारिक बाज़ार और विशाल गोदाम थे। उनमें से एक गोदाम और बिक्री केन्द्र बड़े अन्ना का भी था। उनका वास्तविक नाम तो किसी को मालूम नहीं था, लेकिन नगर के लोग उन्हें सम्मान से 'बड़े अन्ना' कहकर पुकारते थे। वे तन्दुरुस्त और गठीले शरीर के थे लेकिन उम्र बढ़ने के साथ उनके सिर के बाल झड़ चुके थे। स्वभाव से वे अत्यन्त मृदुभाषी और व्यवहारकुशल थे।

बड़े अन्ना बरसों से समुद्री व्यापार कर रहे थे। उन्होंने अपने व्यापार की शुरुआत काली मिर्च के विक्रय से की थी। समय के साथ उनका कारोबार इतना बढ़ गया कि उनके जहाज़ खम्भात की खाड़ी से लेकर दामिरिका (केरल का मालाबार तट) के बन्दरगाहों तक नियमित रूप से व्यापार करने लगे। लेकिन वे इतने भर से सन्तुष्ट नहीं थे। उनका अगला लक्ष्य मोज़ाम्बिक और रोमन नगरों तक अपना व्यापार फैलाना था।

उस समय इस समुद्री मार्ग का बड़ा भाग अरब व्यापारियों के कब्ज़े में था। उन दिनों ऐसा कहा जाता था कि यदि हिन्द महासागर में लगभग

40 दिनों की समुद्री यात्रा कर मोज़ाम्बिक पहुँचना हो, तो ऐसा साहस और कौशल केवल अरब नाविकों में ही था। ऐसा कहने की ठोस वजह भी थी। समुद्री यात्राएँ बहुत ही लम्बी और बोरियत भरी होती थीं। कई-कई दिनों तक चारों ओर केवल अथाह जलराशि दिखाई देती थी। समय बिताने के साधन भी लगभग नहीं के बराबर होते थे। पर्वत, नदियाँ, वनस्पति और जीव-जन्तुओं से भरी धरती के दृश्य देखने के अभ्यस्त लोगों के लिए समुद्र का यह अनन्त विस्तार मानसिक धैर्य की कठिन परीक्षा लेता था। ऐसी परिस्थितियों में यात्रा करना हर किसी के बस की बात नहीं थी।

अरब नाविक दिशा ज्ञात करने के लिए 'कमाल' नामक उपकरण का इस्तेमाल करते थे। इसी कारण वे दूरस्थ समुद्री यात्राओं में अद्वितीय माने जाते थे।

बड़े अन्ना की ख्वाहिश थी कि भले वे खुद यह व्यापार न कर सकें, लेकिन उनका बेटा ज़रूर यह कर दिखाए। इसी उद्देश्य से वे बचपन से ही उसे छोटी-छोटी समुद्री यात्राओं पर साथ ले जाते, जहाँ उसने जहाज़ चलाने और समुद्र के स्वभाव को समझना सीखा। बाद में उन्होंने उसे एक वर्ष के लिए उज्जैन भेजा, जहाँ उसने खगोलशास्त्र का अध्ययन किया। साथ ही, अपने एक अरब व्यापारी मित्र के जहाज़ पर भी उसे यात्रा के लिए भेजा, ताकि वह अनुभवी अरब नाविकों से समुद्री यात्रा की बारीकियाँ सीख सके। उस यात्रा से लौटने के बाद वह बड़े उत्साह से अपने अनुभव बड़े अन्ना को सुना रहा था।

"अन्ना, हम लोग अल-सुबह ही निकल पड़े थे। सूर्योदय होते ही मैंने समय सूचक बर्तन में पानी भर दिया। समुद्री यात्रा में समय का बहुत महत्व होता है। वैसे तो उज्जैन में मैंने छड़ी की छाया देखकर समय ज्ञात करना सीख लिया था, जिसका इस यात्रा में मुझे काफी लाभ मिला।

"किसी भी स्थान पर छाया से समय जानने के लिए यह जानना आवश्यक होता है कि वह स्थान उज्जैन के पूर्व में है या पश्चिम में*।"

बेटा आगे बताता है, "हम मानसूनी हवाओं के साथ आगे बढ़ रहे थे। तभी अचानक मौसम का मिज़ाज बदल गया और समुद्र में भीषण तूफान आ गया। ऊँची-ऊँची लहरों के बीच हमारा जहाज़ अपनी निर्धारित दिशा

* *वर्तमान समय में ग्रीनविच को शून्य डिग्री देशान्तर के रूप में मान्यता है। प्राचीन भारतीय खगोलशास्त्र में उज्जैन को पृथ्वी का मध्य मानते हुए वहीं से शून्य देशान्तर रेखा गुज़रती हुई मानी जाती थी। इसलिए किसी स्थान की स्थिति, उज्जैन से उसके पूर्व या पश्चिम की दूरी के आधार पर निर्धारित की जाती थी। यदि हमें समय मालूम हो तो छड़ी की छाया की लम्बाई के आधार पर यह भी अनुमान लगाया जा सकता था कि हम उज्जैन से कितनी दूर हैं।*

से भटक गया और हमारे लिए सही दिशा का अनुमान लगाना दुश्वार हो गया। तब एक अरब नाविक ने 'कमाल' उपकरण निकाला और जहाज़ की दिशा का अनुमान लगाने के लिए उसका उपयोग किया।"

बड़े अन्ना ने उत्सुकता से पूछा, "यह 'कमाल' क्या होता है?"

बेटे ने समझाया, "कमाल लकड़ी का एक छोटा-सा चौकोर टुकड़ा (खशबा) होता है, जिसकी प्रत्येक भुजा लगभग एक उँगली के बराबर होती है। उसके ठीक बीच में एक छेद बना होता है। उस छेद में एक धागा (खैत) पिरोया रहता है, जिस पर बराबर-बराबर दूरी पर कई गाँठें लगी होती हैं। इसे इस्तेमाल करने के लिए धागे के एक सिरे को दाँतों में दबाया जाता है और लकड़ी के चौकोर टुकड़े को आगे-पीछे सरकाया जाता है। उसे इस प्रकार सरकाया जाता है कि उसका निचला किनारा क्षितिज को छूता हुआ प्रतीत हो और ऊपरी किनारा ध्रुव तारे को ढँक ले। जब यह स्थिति बन जाती है, तब देखा जाता है कि लकड़ी के टुकड़े तक धागे की कितनी गाँठें आती हैं। गाँठों की संख्या से यह अनुमान लगाया जाता है कि जहाज़ भूमध्यरेखा से कितना उत्तर में है। लेकिन यह अनुमान तभी सही बैठता है, जब नाविक को इस उपकरण के प्रयोग का पर्याप्त अनुभव हो।"

बेटे ने आगे कहा, "उज्जैन में पढ़ाई के दौरान हमने इसकी गणनाएँ भी सीखी थीं। तब हमें बताया भी गया था कि ध्रुव तारा आकाश में क्षितिज से जितनी ऊँचाई पर दिखाई देता है,

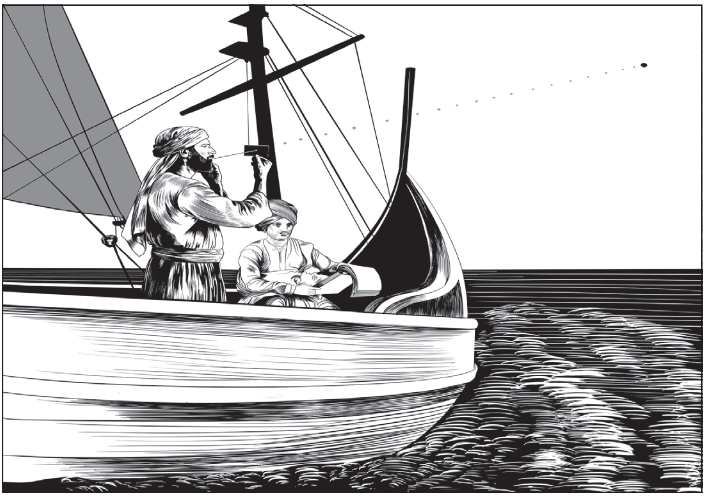

चित्र: मणिपद्मा हर्षवर्धन

वह उस स्थान के अक्षांश के लगभग बराबर होती है। अर्थात् हम उत्तर की ओर जितना बढ़ते हैं, ध्रुव तारा उतना ही ऊँचा दिखाई देने लगता है। देखिए, हमारे नगर से ध्रुव तारा क्षितिज से लगभग 10 डिग्री का कोण बनाता है, जबकि उज्जैन में यही कोण लगभग 23 डिग्री होता है। इसी प्रकार पृथ्वी पर एक ऐसा स्थान भी है जहाँ ध्रुव तारा ठीक सिर के ऊपर, अर्थात् 90 डिग्री की ऊँचाई पर दिखाई देता है।

"उज्जैन में हमने ज्या (sin) और कोज्या (cos) के आधार पर कोणों की गणना करना सीखा था। कमाल यंत्र में लकड़ी के चौकोर टुकड़े की ऊँचाई और गाँठों वाले धागे की लम्बाई के अनुपात से ध्रुव तारे और क्षितिज के बीच बनने वाले कोण की ज्या ज्ञात की जाती है। यदि किसी रात ध्रुव तारा न भी दिखाई दे, तब सप्तर्षि जैसे अन्य तारामण्डलों और नक्षत्रों की सहायता से भी दिशा का अनुमान लगाया जा सकता है। उनके उदय-अस्त होने का समय, आकाश में उनकी ऊँचाई और किसी निश्चित बिन्दु से उनकी स्थिति का हिसाब लगाकर अपनी दिशा मालूम की जा सकती है। इस यात्रा में अरब वाले चचाजान के वर्षों के अनुभव और उज्जैन में सीखे मेरे गणित का ऐसा बढ़िया तालमेल बैठा कि समुद्र में कभी परेशानी का एहसास ही नहीं हुआ। पता ही नहीं चला कि चालीस दिन कब बीत गए।"

उन दिनों गणित का खगोल विज्ञान

ध्रुव तारे से दिशा की पहचान

धरती के अक्ष को उत्तर की ओर बढ़ाते जाओ, बढ़ाते जाओ तो ध्रुव तारा मिल जाएगा। ध्रुव तारा धरती के उत्तर-दक्षिण अक्ष पर है। इसलिए धरती द्वारा अपनी धुरी या अक्ष पर घूमते हुए खुद का चक्कर लगाने पर बाकी के तारों का तो उदय और अस्त होता है, लेकिन ध्रुव तारा अपनी जगह पर ही स्थिर दिखता है। हम धरती पर जहाँ खड़े होते हैं, उसी के अनुसार ध्रुव तारा हमें क्षितिज से अलग-अलग ऊँचाई पर दिखाई देता है। साथ दिखाए चित्र के मुताबिक, उत्तरी ध्रुव पर खड़े इन्सान को ध्रुव तारा सिर के ठीक ऊपर दिखाई देगा और भूमध्यरेखा पर खड़े इन्सान को ध्रुव तारा क्षितिज के पास दिखाई देगा। यानी पृथ्वी के उत्तरी गोलार्द्ध में प्रत्येक अक्षांश पर ध्रुव तारे की क्षितिज से ऊँचाई अलग-अलग होती है।

चित्र: आमोद कारखानीस

में काफी इस्तेमाल होता था। भारतीय खगोलविद् इस निष्कर्ष पर पहुँच चुके थे कि पृथ्वी गोलाकार है। उन्हें यह भी ज्ञात था कि समुद्री यात्राओं में दूरी और दिशा का सही अनुमान लगाने के लिए त्रिकोणमिति अत्यन्त उपयोगी सिद्ध होती है। इन खगोलविदों ने यह भी पता लगा लिया था कि धरती अपनी धुरी पर खुद का एक पूरा चक्कर लगाने में कितना समय लेती है। यानी सौरदिन की गणना काफी सटीकता से की गई थी। उदाहरण के लिए, आर्यभट्ट ने सौरदिन की अवधि 23 घण्टे 56 मिनट 4.1 सेकण्ड बताई थी, जो वर्तमान समय की गणनाओं – 23 घण्टे 56 मिनट 4.091 सेकण्ड – के लगभग समान है। भारतीय खगोलविदों ने विभिन्न स्थानों पर सूरज ठीक सिर के ऊपर आने में लगने वाले समय के आधार पर पृथ्वी के आकार और उसकी परिधि का भी अनुमान लगाया। कुछ गणनाओं के आधार पर उन्होंने ज्या की तालिकाएँ तैयार कीं, जिनकी

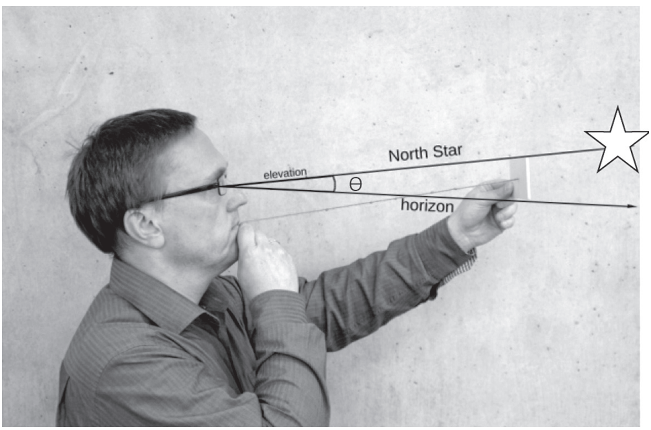

ध्रुव तारे की क्षितिज से दूरी मापने की बजाय, जैसा कि चित्र में दिखाया गया है, क्षितिज और ध्रुव तारे के बीच बनने वाले कोण को माप सकते हैं।

चित्र में दर्शाया गया θ (थीटा) कोण ही उस स्थान का अक्षांश होता है।

'कमाल' का उपयोग करते समय लकड़ी के चौकोर टुकड़े की ऊँचाई और गाँठों वाले धागे की लम्बाई एक समकोण त्रिभुज बनाती है। इस त्रिभुज में लकड़ी के चौकोर की ऊँचाई लम्ब (perpendicular) होती है और धागे की लम्बाई कर्ण (hypotenuse)। अतः इस त्रिभुज में लम्ब ÷ कर्ण = ज्या (sin) θ होता है, जहाँ θ ध्रुव तारे की क्षितिज से ऊँचाई (कोण) को दर्शाता है।

यदि sin तालिका मालूम हो तो उसकी मदद से अक्षांश पता किया जा सकता है।

सहायता से ग्रहों और तारों की स्थिति का अनुमान लगाया जा सकता था। भारतीय नाविकों ने इन वैज्ञानिक उपलब्धियों का भरपूर लाभ उठाया। पूर्वी तट पर उड़ीसा और तमिलनाडु के बन्दरगाहों से जहाज़ इंडोनेशिया, कंबोडिया और चीन तक नियमित रूप से व्यापार के लिए जाते थे। वहीं पश्चिमी तट पर गुजरात, कोचीन और अन्य बन्दरगाहों से अरब, अफ्रीका तथा यूरोप के देशों के साथ समुद्री व्यापार होता था।

अरब व्यापारियों के एकाधिकार को तोड़कर अपना व्यापार बढ़ाने का बड़े अन्ना का सपना कितना पूरा हुआ, यह तो कोई नहीं जानता। लेकिन कुछ वर्षों बाद पेरियार नदी की गाद की वजह से मुज़रिस बन्दरगाह भी जहाज़ों के आवागमन के लिए उपयुक्त नहीं रहा और अन्तत: काल के गाल में खो गया, लुप्त हो गया। फिर भी व्यापार कभी नहीं रुका। मुज़रिस का स्थान धीरे-धीरे कोच्ची के बन्दरगाह ने ले लिया और अगली कुछ शताब्दियों तक भारत का व्यापार यूरोप और अफ्रीका के साथ बढ़ता ही गया। तारों की गति का सूक्ष्म अध्ययन और त्रिकोणमिति की जटिल गणनाओं ने भारतीय समुद्री व्यापार को नई ऊँचाइयों तक पहुँचाया और भारतीय समाज की समृद्धि में महत्वपूर्ण योगदान दिया। लेकिन बाद की शताब्दियों में भारत में विज्ञान, गणित और तकनीकी विकास की वह निरन्तरता बनी नहीं रह सकी। हम समकालीन विश्व से पिछड़ गए। समय के साथ हिन्द महासागर के व्यापारिक मार्गों पर पहले अरब व्यापारियों का प्रभाव बढ़ा और फिर वास्को द गामा के भारत पहुँचने के बाद यूरोपीय व्यापारियों ने भी समुद्री व्यापार पर अपना प्रभुत्व स्थापित करना आरम्भ कर दिया। इसके साथ ही हिन्द महासागर के व्यापार का स्वरूप धीरे-धीरे बदलने लगा।

आमोद कारखानीस: पेशे से कम्प्यूटर इंजीनियर। लेखन एवं चित्रकारी का शौक। मुम्बई में रहते हैं।

मराठी से अनुवाद: माधव केलकर: *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध हैं।

बिन शब्दों का अर्थ

कैसे शब्दहीन किताबों ने बच्चों को अभिव्यक्ति के लिए जगह दी

नीलांश सेठी

यह लेख इन्दौर की एक पारधी बस्ती के बच्चों के साथ बिताए पढ़ने-पढ़ाने के सत्रों से उभरा है। पारधी समुदाय उन विमुक्त जनजातियों में शामिल है जिन्हें ब्रिटिश शासन के दौरान क्रिमिनल ट्राइब्स एक्ट (आपराधिक जनजाति अधिनियम) के तहत 'आपराधिक जन-जातियों' के तौर पर लेबल किया गया था। अलबत्ता, यह अधिनियम आज़ादी के बाद खारिज कर दिया गया था, मगर इससे जुड़ा लांछन आज तक इस समुदाय को अनेक तरीकों से प्रभावित करता रहा है। आज भी, कई परिवारों को उनके समुदाय के ऐतिहासिक अपराधीकरण से जुड़े लांछन, भेदभाव, और पुलिस द्वारा बार-बार की जाने वाली छान-बीन का सामना करना पड़ रहा है।

इस बस्ती के ज़्यादातर परिवार देश के विभिन्न हिस्सों के मेलों में आर्टिफिशियल जेवर व अन्य सामग्री बेचा करते हैं। कई परिवार लम्बे समय के लिए सफर तय करते हैं, और बच्चे अक्सर उनके साथ जाया करते हैं, नहीं तो, बस्ती में ही रिश्तेदारों के साथ ठहर जाते हैं। उनकी रोज़मर्रा की ज़िन्दगियाँ बार-बार जगह बदलने, अनियमित स्कूल, सीमित अकादमिक सहयोग, और कम उम्र में आ पड़ी ज़िम्मेदारियों से आकार लेती हैं। कई बच्चे अपने परिवार में स्कूल जाने वाली पहली पीढ़ी हैं, और वे अक्सर औपचारिक स्कूली शिक्षा की रफ्तार और भाषा से मेल बिठाने में संघर्ष किया करते हैं।

इस सन्दर्भ में शब्दहीन सचित्र किताबें एक ऐसी जगह बनीं जहाँ बच्चे गौर कर सकते हैं, कल्पना कर सकते हैं, बयान कर सकते हैं और अपने अनुभवों को अपनी रची कहानियों के साथ जोड़ सकते हैं।

जिस दिन मैं पहली बार बस्ती में *आम की कहानी* लेकर गया, बच्चे पैसों के लिए ताश खेल रहे थे। मैंने वहीं पर सत्र लेने की ठानी। मैं हिचक रहा था – क्या बच्चे सुनेंगे, या क्या उनकी दिलचस्पी होगी? इस जगह, पढ़ने के साथ अक्सर डर जुड़ा होता है: 'ठीक तरह' पढ़ने का डर, हिन्दी में बोलने का डर, गलतियाँ करने का डर।

बगैर ज़्यादा कुछ कहे, मैं बच्चों को चित्रों से रू-ब-रू करवाने लगा। आहिस्ता-आहिस्ता, बच्चे आए और मेरे इर्द-गिर्द बैठ गए। कुछ देर बाद, आसपास खड़े बड़े भी शामिल हो गए। कहानी शब्दों के बिना खुलती है और अन्त में एक सवाल उभरता है – आम किसे मिलेगा? बच्चों को? गिलहरी को? या, कौए को?

सभी इस पर बहस करने लगे। वे बच्चे भी जो अमूमन चुप रहा करते हैं, अब भागीदारी करने लगे, पक्ष लेने लगे और आत्मविश्वास के साथ अपनी राय साझा करने लगे। कुछ ने दलील दी कि आम बच्चों को मिलना चाहिए क्योंकि उन्होंने उसके लिए कड़ी मेहनत की है। बाकियों को लगा कि जानवरों को मिलना चाहिए क्योंकि वे आम के ज़्यादा नज़दीक थे। आखिर एक छोटे लड़के ने कहा, "कोई फर्क नहीं पड़ता कि आम किसे मिलता है। जिस किसी को भी आम मिलेगा, वह उसे सभी में बाँट देगा।" उस पल मुझे एहसास हुआ, शब्दहीन किताबें सामूहिक सोच और न्याय व साझेपन जैसे मूल्यों के लिए जगह बना सकती हैं।

पारधी बच्चों के साथ काम करते हुए, मैंने बार-बार यह गौर किया था कि किताबें, खास तौर पर शब्दयुक्त किताबें, उन्हें बेगानी-सी लगती हैं। अपने परिवार में स्कूल जाने वाली पहली पीढ़ी होने के नाते, उन्हें घर में ऐसा वातावरण मुहैया नहीं हो पाता जो पढ़ने को बढ़ावा और सहारा देता हो। किताबों की भाषा उनकी दूसरी भाषा है, और स्कूल में पढ़ना अक्सर सुधार और मूल्यांकन से बँधा रहता है। ऐसे सन्दर्भों में, पढ़ना एक परीक्षा ही बन जाता है।

इस सन्दर्भ में, मुझे महसूस हुआ कि शब्दहीन किताबें एक सहज प्रवेश-द्वार बन जाती हैं। वे व्याख्या के लिए खुली होती हैं, और किसी एक विशिष्ट जवाब की अपेक्षा नहीं करतीं। उनके चित्र बच्चों को महसूस करने, सोचने और बोलने के लिए आमंत्रित करते हैं। यहाँ किताब कोई कहानी नहीं कह रही होती; बल्कि, यहाँ बच्चे खुद अपनी कहानियाँ गढ़ रहे होते हैं। एक सुगमकर्ता बतौर यह चुनौतीपूर्ण था, क्योंकि मैं शब्दहीन किताबों के साथ पहली दफा काम कर रहा था। धीरे-धीरे, मुझे एहसास होने लगा कि शब्दहीन किताबों के साथ मेरी भूमिका उनको कहानी सुनाने या समझाने की नहीं थी, बल्कि बच्चों के साथ बैठकर गौर करने, व्याख्या

करने और साथ मिलकर अर्थ गढ़ने की थी।

साथ मिलकर अर्थ गढ़ना

दूसरे सत्र के लिए, मैंने *ए विज़िट टू द सिटी मार्केट* को चुना। दिवाली का त्यौहार नज़दीक आ रहा था, और इस दौरान कई बच्चों ने अपने-अपने वालिदैन के साथ शहर में छोटी दुकानें लगाई थीं। मुझे लगा कि वे किताब की थीम के साथ जुड़ाव बना पाएँगे।

हम जैसे-जैसे चित्रों से गुज़रने लगे, बच्चे उन दृश्यों को बाज़ार के अपने अनुभवों से जोड़ने लगे व उनकी व्याख्या करने लगे। पोस्ट-बॉक्स के एक चित्र से, हालाँकि, जिज्ञासा और असमंजस उभर आईं। कुछ ने सोचा कि वह एक सिलिंडर, या यहाँ तक कि एक बम जैसा दिखता था। इससे आगे की चर्चा के लिए जगह खुली। जब एक बच्चे ने किसी चित्र की तरफ इशारा किया और कहा, “अम्मा तो एंगिया बेच रही हैं,” तब मैंने बच्चों से एंगिया का मतलब पूछा, और उन्होंने समझाया कि वह बैंगन होता है। वहाँ से हम अनुवाद करने के एक साझा काम में लग गए। साथ मिलकर, हमने चित्रों में नज़र आ रही चीज़ों का हिन्दी से पारधी में अनुवाद करना शुरू कर दिया। इससे एक ऐसी जगह बनी जहाँ बच्चे, जिस भी भाषा में वे सहज महसूस करते, बोलने लगे। इससे उनमें अपनेपन और स्वायत्तता की भावना को बल मिला, साथ ही, उनकी सांस्कृतिक व भाषाई पहचान को मान्यता भी मिली।

सत्र के दौरान उनके भटकते ध्यान को भाँपते हुए, मैंने उनसे उस बाज़ार का चित्र बनाने को कहा जहाँ वे अक्सर जाया करते हैं। या, उनके अनुसार एक बाज़ार कैसा होना चाहिए, इसका चित्र भी वे बना सकते थे। अलबत्ता, कई बच्चों ने चित्रों की नकल की, एक बच्चे ने अपने बाज़ार में एक डीजे वैन बनाई (चित्र-1)। “वरना लोग ऊब जाएँगे और उन्हें मनोरंजन की ज़रूरत रहेगी” – अपने चित्र को समझाते हुए उस बच्चे ने बताया। इस बारीकी ने उजागर किया कि रोज़मर्रा की जगहों में आनन्द और ज़िन्दादिली की कल्पना बच्चे किस तरह किया करते हैं।

बाद में, मैंने चित्रों के प्रिंट लिए, और बच्चों से आग्रह किया कि वे चित्रों को क्रम में जमाएँ ताकि एक सुसंगत कहानी बन सके। झगड़ों, छीना-झपटी, और यहाँ तक कि पन्नों के फटने (जिसके लिए मैंने पहले ही अतिरिक्त प्रतिलिपियाँ तैयार करके रखी थीं) के बावजूद यह गतिविधि हमें अहम चर्चाओं तक ले गई।

चित्रों को क्रम में लगाते हुए, बच्चों ने बारीकियों पर गौर करना शुरू किया और उनका इस्तेमाल करते हुए वे अपनी व्याख्याएँ बनाने लगे। मसलन, एक बस्ते से जुड़े चित्रों का

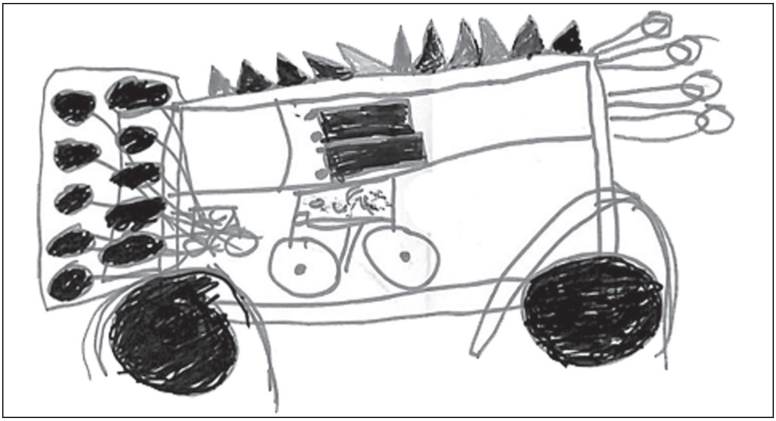

चित्र-1: एक बच्चे द्वारा बनाई गई डीजे वैन, जब उससे उस बाज़ार को चित्रित करने के लिए कहा गया जहाँ वे अक्सर जाया करते हैं, या जैसा बाज़ार वे चाहते हैं।

क्रम ठीक करते हुए, एक बच्चे ने गौर किया कि फटे बस्ते का चित्र नया बस्ता खरीदने के चित्र से पहले ही आना होगा। जब एक अन्य बच्चा क्रम बदलने जा रहा था, तो उसने चित्र की तरफ इशारा करते हुए कहा, "देख ना, फटा बैग है तो ये पहले आएगा।"

इसी तरह, जब उन्होंने एक ही नारियल से नारियल पानी पीते बच्चों का चित्र देखा, तो वे नारियल के साझा किए जाने के अलग-अलग कारण सुझाने लगे। किसी एक ने सुझाया, "पैसे नहीं होंगे, इसलिए एक से ही पी रहे हैं।" किसी अन्य ने इस दृश्य को पिछले चित्र, जहाँ एक लड़के को चोट लग गई थी, से जोड़ा और सुझाया कि इसीलिए वे नारियल पानी पी रहे थे।

ये व्याख्याएँ उन अनुभवों से जुड़ी थीं जो बच्चों के लिए जानी-पहचानी थीं। वे अक्सर अपने तरह-तरह के अनुभवों से बोलते थे, जैसे अपने भाई-बहन-बन्धुओं के साथ चीज़ें साझा करना, कुछ खरीदने के लिए पर्याप्त पैसे न होना, या किसी चीज़ की कीमत को ध्यान में रखते हुए उसे न खरीदने का निर्णय लेना। इस तरह, बच्चे न सिर्फ चित्रों को क्रम में लगा रहे थे, बल्कि अपने अनुभवों की मदद लेते हुए चित्रों और कहानी के मायने तय कर रहे थे।

उन्होंने अपने जिए अनुभवों और सामाजिक वास्तविकताओं पर चिन्तन किया। आखिर जब उन्होंने अपने क्रम का असल किताब से मिलान किया तो उनके सामूहिक उल्लास और तालियों की गड़गड़ाहट में उपलब्धि का गहरा एहसास साफ झलक रहा था।

बाज़ार, बच्चों के जिए अनुभवों के ज़रिए

एक सचित्र अकॉर्डियन किताब, *बाज़ार,* के इस्तेमाल ने उस कोशिश को और भी गहराई दी जिसमें बाज़ार को एक जी गई वास्तविकता के बतौर देखा जा रहा था। जैसे ही उस किताब को खोलकर एक धागे के ज़रिए टाँगा गया, बच्चे अचरज और जिज्ञासा के साथ प्रतिक्रिया देने लगे, "यह कैसी किताब है?" किताब के उस अनजान रूप ने तुरन्त उनके ध्यान को खींच लिया। अवलोकन जल्द ही खेल में तब्दील हो गया, जब बच्चों ने मुझसे चित्रों के बीच अलग-अलग चीज़ें खोजने की इच्छा ज़ाहिर की।

धीरे-धीरे, यह खोजबीन किस्सागोई के रूप में विकसित होने लगी। बच्चे उन्हीं चित्रों से अलग-अलग कथाएँ गढ़ने लगे: "वह मोज़े खरीद रहा है क्योंकि सर्दियाँ आ रही हैं," "नहीं, ज़रूर उसकी चप्पल खो गई होगी," "वह रो रहा है क्योंकि उसके बाबा उसे खिलौना खरीदकर नहीं दे रहे।" एक बच्चे ने चित्रों को तुरन्त अपनी ज़िन्दगी से जोड़ लिया और कहा, "मेरे साथ भी ऐसा हुआ था," और फिर उसने अपनी कहानी लिखने की कोशिश की। इस खास पल ने ज़ाहिर किया कि किस तरह चित्रों ने निजी कहानी कहने के रास्ते खोले।

एक अन्य खास पल तब उभरा जब एक बच्चे ने चित्र में एक आदमी की ओर इशारा करते हुए कहा, "ये आदमी चोरी कर रहा है।" साथ ही, उस आदमी के चेहरे पर डर के भाव की व्याख्या उसने अपराधबोध के तौर पर की। एक अन्य बच्चे ने टोपी पहने एक आदमी की शिनाख्त करते हुए कहा, "ये तो पाकिस्तानी है।" इन प्रतिक्रियाओं ने ज़ाहिर किया कि बच्चे चित्रों को अलग-थलग नहीं पढ़ते, वे उन्हें अलग-अलग प्रभुत्वशाली सामाजिक नैरेटिव, स्टीरियोटाइप, और जिए अनुभवों के ज़रिए पढ़ा करते हैं।

जब एक बच्चे ने गौर किया, "बाज़ार में पुलिस तो होती ही है, इसमें नहीं है," तो चर्चा चित्रों से हटकर सत्ता के समक्ष उनके अपने अनुभवों की तरफ बढ़ चली। डर की, पीटे जाने की, और खदेड़े जाने की कहानियाँ उभरने लगीं। इस बिन्दु पर पहुँचकर, वह किताब एक ऐसा माध्यम बन गई जिसके ज़रिए बच्चों ने सार्वजनिक जगहों में निगरानी रखे जाने, बहिष्कृत किए जाने, और असुरक्षित महसूस किए जाने के अपने अनुभवों को बयान किया।

कहानियों से कार्रवाई तक

मैंने गौर किया कि चित्रों को देखते हुए बच्चे अक्सर उन्हें अपने अनुभवों से जोड़ा करते थे। उनके अवलोकन हमें उन चीज़ों की चर्चाओं तक ले जाते थे जिन्हें उन्होंने अनुभव

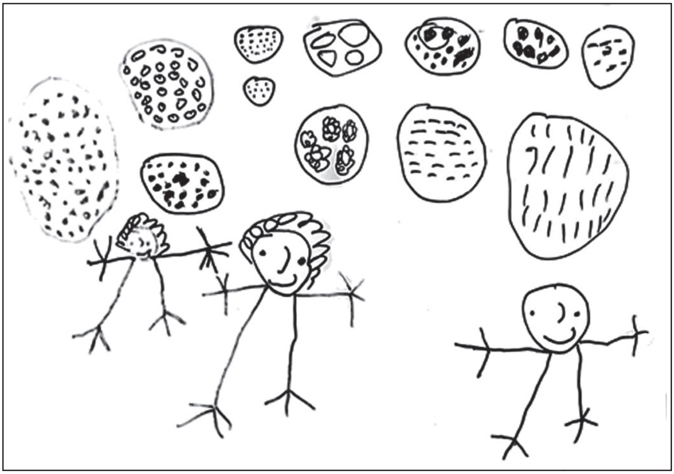

चित्र-2: बाज़ार का दृश्य।

किया है, अपने आसपास देखा है, या अपने परिवारों में जिसका ज़िक्र किया है। इससे मेरी जिज्ञासा यह जानने को हुई कि अगर हम एक ऐसी जगह बनाते हैं जहाँ वे साथ मिलकर ऐसे अनुभवों से कहानियाँ बना सकें, तो कैसा होगा। इसलिए मैंने सामूहिक कहानी-निर्माण का इस्तेमाल करना शुरू किया, ताकि बच्चों को उनके अनुभवों पर चिन्तन करने का, एक-दूसरे को सुनने का, और एक-दूसरे के विचारों को विकसित करने का ज़रिया मिल सके। ये कहानियाँ तब थिएटर के लिए सामग्री बन गईं, जिनकी मदद से बच्चे परिस्थितियों पर बात करने और कल्पना करने से आगे बढ़कर, उन्हें साथ मिलकर निर्मित और अभिनीत कर सके।

जब मैं बस्ती पहुँचा तो बच्चे कंचे खेल रहे थे, सो उनके खेल में खलल डालने की बजाय मैं भी उनके साथ शामिल हो गया। खेलते-खेलते, मैंने उनसे किसी अन्य बच्चे की खेल खेलते हुए नकल उतारने और उसी मुद्रा में जम जाने का आग्रह किया – उनकी हलचल को स्थिर चित्रों में तब्दील करने की कोशिश बतौर। धीरे-धीरे, वे बच्चे भी जो अब तक कंचों का खेल देख रहे थे, इस नए खेल में शामिल हो गए। फिर मैंने उनका परिचय 'दौड़ो बच्चों दौड़ो, जंगल में आग लगी, एकसाथ मूर्ति' नाम के खेल से करवाया। इसमें बच्चे यहाँ-वहाँ दौड़ते हैं, और एक संकेत सुनाई देने पर उसी जगह बुत बनकर जम जाते हैं।

जब वे बुत बनने को लेकर सहज हो गए, तब मैंने उस खेल में खाना

पकाने, पानी पीने, और नाचने जैसे निर्देश जोड़ दिए। फिर मैंने ऐसे निर्देश भी जोड़ना शुरू किए जिनके दृश्य बनाने के लिए एक से अधिक व्यक्ति की ज़रूरत पड़ती है – मसलन, एक कक्षा, एक बाज़ार, या एक बगीचा। इन जगहों और परिस्थितियों को दर्शाने के लिए, बच्चे अपने-अपने शरीर को एक-दूसरे के साथ तालमेल बैठाकर व्यवस्थित करने लगे। इस तरह, यह गतिविधि आहिस्ता-आहिस्ता एक व्यक्तिगत शारीरिक अभिव्यक्ति से बढ़कर सामूहिक दृश्यों की अभिव्यक्ति में तब्दील हो गई।

फिर हम एक गोले में बैठ गए और साथ मिलकर एक कहानी बुनने लगे: "रविवार के एक दिन, मैं हाथ में पचास रुपए लिए बाज़ार गई..." अब बच्चों को यहाँ से कहानी आगे बढ़ानी थी। कोई बच्ची अंगूर खरीदना चाहती थी, तो कोई केले; कोई कपड़े खरीदना चाहता, तो कोई पानी पताशे खाना चाहता। जब दोबारा मेरी बारी आई, तो मैंने इसमें एक नया पहलू जोड़ा: "नगर निगम अधिकारी बाज़ार आ गए।" एक लड़के ने तुरन्त प्रतिक्रिया दी, "तब तो हमें भाग जाना पड़ेगा; वे हमारी दुकान का सामान ज़ब्त कर लेंगे।" किसी अन्य ने जोड़ा, "तब तो सारे आदमी गिरफ्तार कर लिए जाएँगे, और औरतें व बच्चे पीछे छूट जाएँगे।" जब मैंने पूछा कि हम क्या कर सकते हैं, तब एक बच्चे ने सुझाया कि पैसे इकट्ठे करके अधिकारियों को दिए जा सकते हैं, वहीं किसी अन्य ने सुझाया कि अर्ज़ी लिखी जा सकती है। जैसे-जैसे कहानी खुलती गई, रिश्वतखोरी, आवेदनों, भूख, और प्रतिरोध जैसी अलग-अलग थीम सहज रूप से उभरने लगीं।

यह कहानी बाद में एक नाटक प्रस्तुति का हिस्सा बनी। बच्चों ने अपने अभिनय में अर्ज़ी लिखने की प्रक्रिया दर्शाते हुए व्यक्त किया कि वे वहाँ कई सालों से अपनी दुकान लगाते हुए आ रहे हैं, और यह कि उनका गुज़ारा इसी पर निर्भर करता रहा है, और आखिर में, वे इसे जारी रखने की दरखास्त करते हैं। बच्चों की ये प्रतिक्रियाएँ उनकी परिचित परिस्थितियों से करीबी से प्रभावित थीं। उनमें से कई के परिवार इन्दौर में राजवाड़ा जैसी जगहों, और प्रदेश व देश के विभिन्न हिस्सों के मेलों और धार्मिक सम्मेलनों में, आर्टिफिशियल ज्वेलरी व अन्य सामग्री बेचा करते हैं। यानी उस नाटक से जो उभरा, वह थी एक कहानी जो सीधे उनकी जी गई वास्तविकताओं से ली गई थी।

चित्र, भाव और अपनापन

इसके बाद, मैंने *जब मैं मोती को घर लाई* चुनी, ताकि इन्सान और कुत्ते के रिश्ते की थीम की पड़ताल की जा सके। इरादा था प्यार, परवाह, समानुभूति, और हिफाज़त जैसे भावों

के साथ रू-ब-रू होना। साथ ही, बच्चों को अपनी ज़िन्दगियों में इन भावों की पहचान कर पाने में सक्षम बनाना। पढ़ने के बाद की गतिविधि के लिए, मैंने चिकनी मिट्टी (क्ले) पेश की – अभिव्यक्ति के ज़रिए के तौर पर।

मैंने बच्चों को वह जानवर बनाने के लिए कहा जिसे वे गोद लेना चाहेंगे (चित्र-3)। किसी ने एक ऐसे कुत्ते की कल्पना की जो हर उस शख्स को काटेगा जो उसे परेशान करेगा, एक बच्चे ने सबको डरा देने वाला एक बाघ बनाया, वहीं एक अन्य बच्चे ने एक साँप बनाया जो नाच सकता हो ताकि वह बच्चा उससे पैसे कमा सके। ये जानवर उन बच्चों की ज़रूरतों और हसरतों को उजागर करने वाले, हिफाज़त, परवाह, और अपनेपन के प्रतीक बन गए।

इस गतिविधि के बाद, मैंने बच्चों से पूछा कि क्या कोई ऐसा था जिसे वे याद किया करते थे या जिनसे मिलने की वे इच्छा रखा करते थे। कुछ ने अपनी दादी-नानी, तो कुछ ने अपनी माँओं की बात की। इस पल में, उस शब्दहीन किताब ने, मिट्टी के साथ काम करने के उस स्पर्श-प्रधान अनुभव के साथ मिलकर, बच्चों के लिए एक ऐसी जगह बना ली थी जहाँ वे जटिल भावों की पड़ताल कर सकें और उन भावनाओं को मुखर कर

चित्र-3: बच्चों से वह जानवर बनाने के लिए कहा गया जिसे वे गोद लेना चाहेंगे। किसी ने साँप बनाया तो किसी ने कुत्ता और किसी ने बाघ।

सकें जिन्हें अन्य जगहों पर अभिव्यक्त करने में वे अक्सर झिझकते हैं।

सीखे को भुलाने की प्रक्रिया

इन सत्रों के दौरान, मैं एक सुगमकर्ता बतौर अपनी आदतों से वाकिफ हुआ। मैं अक्सर खुद को यह चाहते हुए पाता था कि मैं बच्चों को चित्रों की मेरी अपनी समझ की तरफ ले जा सकूँ। वक्त बीतने पर, मुझे एहसास हुआ कि शब्दहीन किताबों की ताकत ही एकाकी, नियत अर्थ की गैर-मौजूदगी में है।

इसके लिए यह ज़रूरी था कि मैं सीखूँ चुप कैसे रहते हैं, सुनते कैसे हैं, और बच्चों की व्याख्याओं पर भरोसा कैसे करते हैं। चित्रों को पढ़ना न सिर्फ बच्चों के लिए सीखने की एक प्रक्रिया रही, बल्कि यह मेरे लिए भी सीखने का एक अनुभव बन गई।

इस सफर के ज़रिए, मैं यह देख पाया कि शब्दहीन किताबें बच्चों को बोलने की, सोचने की, और बगैर डरे रचने की जगह मुहैया करवाती हैं। भाषा और सही-गलत के दबाव से मुक्त, वे अपनी खुद की कहानियाँ और अर्थ गढ़ते हैं।

यह अनुभव मुझे यह याद दिलाता रहा कि एक लाइब्रेरी केवल शेल्फ या किताबों के भण्डार से नहीं बनती, यह उन जगहों में बनती है जहाँ बच्चे सुरक्षित महसूस करते हों - खोजने के लिए, कल्पना करने के लिए, और अभिव्यक्त करने के लिए।

नीलांश सेठी: कल्पना मेहता'स जुंबिश सोसाइटी फॉर वेल-बीइंग के सह-संस्थापक हैं। जुंबिश के प्रोग्राम लीड बतौर, नीलांश इन्दौर के पारधी समुदाय के बच्चों और युवाओं के साथ काम करते हैं। उनका काम समुदाय विकास तथा सामाजिक व भावनात्मक सलामती पर केन्द्रित होने के साथ ही, कला और किस्सागोई को सीखने और अभिव्यक्त करने के औज़ारों के रूप में भी इस्तेमाल करता है। उन्होंने विकास और समाजशास्त्र का अध्ययन किया है।

अँग्रेज़ी से अनुवाद: अतुल वाधवानी: *एकलव्य* के शिक्षा साहित्य समूह और *संदर्भ* पत्रिका से सम्बद्ध।

सभी फोटो: नीलांश सेठी।

बच्चों द्वारा बनाए गए अन्य चित्र कवर-3 पर देखें।

तुम ऐसे लिखते हो?

बच्चों के लिखना सीखने के रुझान को दिखाती किताब

कमलेश चन्द्र जोशी

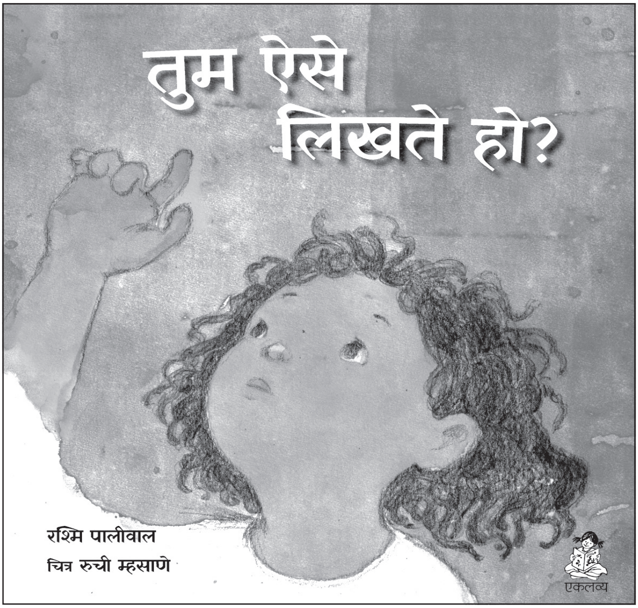

इन दिनों बाल साहित्य में विविध विषयों को केन्द्र में रखकर अनेक किताबें प्रकाशित की जा रही हैं। हाल ही में रश्मि पालीवाल द्वारा लिखित और *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित किताब *तुम ऐसे लिखते हो?* पढ़ने को मिली। यह किताब एक नए विषय यानी बच्चों की शुरुआती साक्षरता व भाषा विकास की ओर हमारा ध्यान खींचती है। हिन्दी बाल साहित्य में बच्चों को केन्द्र में रखकर अनेक किताबें लिखी गई हैं लेकिन इस विषय पर इससे पहले ऐसी कोई किताब देखने या पढ़ने को मिली हो, ऐसा याद नहीं आता। इस किताब का मुख्य विषय बच्चों में प्रारम्भिक वर्षों के दौरान

लिखना सीखने के प्रति विकसित होने वाली रुचि और उसकी प्रक्रिया है।

इस किताब को पढ़ते हुए समझ में आता है कि घर में पढ़ने-लिखने का अनुकूल वातावरण किस प्रकार बच्चों में पढ़ने-लिखने के कौशल के विकास में महत्वपूर्ण भूमिका निभाता है। इस किताब में लेखिका ने अपनी बेटी के दो से आठ वर्ष की आयु तक के लेखन-विकास की यात्रा को सहेजकर रखे गए चित्रों और उसकी लिखित सामग्री के माध्यम से क्रमबद्ध ढंग से प्रस्तुत किया है। किताब को पढ़ते हुए बाल मनोविज्ञान के अन्तर्गत पियाजे के संज्ञानात्मक विकास के सिद्धान्त की याद आती है। साथ ही, बच्चे की भाषा सीखने की जन्मजात क्षमता के सम्बन्ध में नोम चॉम्स्की द्वारा प्रतिपादित अवधारणा भी इस पूरी प्रक्रिया में साकार होती दिखाई देती है। इसके अतिरिक्त, पुस्तक में बच्चों में विकसित होने वाली उद्‌गामी साक्षरता (emergent literacy) की स्पष्ट झलक भी देखने को मिलती है।

ध्वनियों से लेखन की शुरुआत

किताब की शुरुआत में ही यह दिखाया गया है कि दो साल की लाली ध्वनियों के साथ प्रयोग करते हुए अपनी तरह की रचनाएँ कर रही है। वह ‘मछली जल की रानी है, जीवन उसका पानी है’ गीत को अपने शब्दों में गुनगुना रही है- “मछली जल का राना है... जीवन उसका पाना है...।” इसी प्रकार, वह कागज़ पर विभिन्न प्रकार के

निशान बनाकर उन्हें नाम दे रही है- “ये मैंने अफ़्रीगो... ये तफ़्रीगो... ये कोकी... ये कोकी... ये कुमछिल... ये व्रेगो... ये तोफी हागो, दोंगों, बागो, लागो, मोगो... तीगी... फागू, लागू, मागू, लागू, ये पांगू...।” लेखिका इन उदाहरणों के माध्यम से यह प्रभावी ढंग से दिखाती है कि औपचारिक लेखन सीखने से पहले ही बच्चा ध्वनियों, शब्दों और प्रतीकों के साथ प्रयोग करना शुरू कर देता है।

इस प्रारम्भिक चरण में लाली द्वारा बनाए गए आकार किसी वस्तु के चित्र नहीं हैं, बल्कि वे प्रतीकात्मक रेखांकन (स्क्रिब्लिंग) हैं। ध्वनियों और प्रतीकों के साथ प्रयोग करते हुए शब्दों की रचना करने की उसकी यह क्षमता क्रमशः विकसित होती जाती है और किताब के अन्तिम हिस्से में आठ वर्ष की लाली द्वारा हिन्दी और अँग्रेज़ी लिपि में लिखी गई कहानी तक पहुँचती है। लाली की कहानी ‘एक दिन की बात है...’ से शुरू होती है और अन्त में किसी कल्पित पाठक को ‘थैंक यू’ कहकर समाप्त होती है। लाली की इस यात्रा से बच्चों को सोचने, बोलने, चित्र बनाने, चित्रों पर बात करने का माहौल मिलने का असर साफ तौर पर दिखता है। पढ़ना और लिखना उसी प्रक्रिया का स्वाभाविक विस्तार बन जाते हैं। किताब इस बात को भी रेखांकित करती है कि उचित मार्गदर्शन और समृद्ध भाषायी परिवेश मिलने पर बच्चों में लेखन-कौशल सहज रूप से विकसित होता है। इसके कई साक्ष्य

किताब में ही मिल जाते हैं, जैसे लाली अपनी अम्मा को ऑफिस की रिपोर्ट तैयार करते हुए देखती है। इसी प्रकार, जब वह अपने बनाए चित्रों के बारे में कुछ बताती है, तो उसकी अम्मा पूरी रुचि के साथ उसकी बातें लिखती जाती है। इससे बच्ची को यह एहसास होता है कि उसके विचार और अभिव्यक्ति महत्वपूर्ण हैं व उन्हें लिखित रूप दिया जा सकता है।

किताब के पन्ने पलटते हुए आपको सहज ही यह अनुभव होता है कि लाली का लेखन-कार्य चित्र बनाने के साथ-साथ आगे चलता रहता है। यहाँ चित्रों पर भी गौर करना ज़रूरी है। शुरुआती चित्रों और बाद के चित्रों की तुलना करने पर उनकी जटिलता और अभिव्यक्ति में आए क्रमिक विकास को स्पष्ट रूप से देखा जा सकता है। साक्षरता, कला व प्रिंट-समृद्ध सांस्कृतिक परिवेश में बच्चों के चित्रांकन के विकास के जिन सार्वभौमिक चरणों की पहचान की गई है, उनके अनेक उदाहरण इस किताब में सजीव रूप में देखने को मिल जाते हैं।

अभिभावक की सहयोगात्मक भूमिका

इस प्रसंग में हमारा ध्यान बच्चे के साथ-साथ शिक्षक और अभिभावक की भूमिका की ओर भी जाता है। बच्ची स्वयं सोचती है, खोजती है, प्रयोग करती है और लगातार प्रश्न पूछती है, जबकि अभिभावक उसकी जिज्ञासाओं की पुष्टि करते हैं, आवश्यक जानकारी देते हैं और सीखने की प्रक्रिया में उसका सहयोग करते हैं। उदाहरण के लिए, लाली लिखने की शैली और शब्द-निर्माण के रहस्य को समझने का प्रयास करती है और अपनी अम्मा से उसकी पुष्टि करती है। वह पूछती है– “s-o-n-k-e-y क्या होता है? n-o-s-k-e-y क्या होता है? o-n-s-k-e-y क्या होता है?” यहाँ ध्यान देने योग्य बात यह है कि वह कैसे वर्णों के हेर-फेर से शब्द बना रही है और फिर उसकी अम्मा इन संयोजनों को पढ़कर ‘सौनकी’, ‘नौस्की’ और ‘औंस्की’ जैसे उच्चारण बताती है। यह दर्शाता है कि बच्चों के साथ संवाद को किस प्रकार सहज और

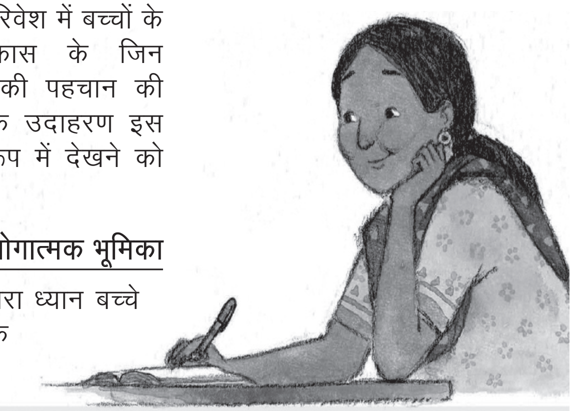

अम्मा लिखती जाती हैं।

सहयोगात्मक ढंग से संचालित किया जा सकता है और बच्चे कैसे उससे समझ बनाते हैं।

पुस्तक में आगे बढ़ने पर बच्चों द्वारा विकसित की गई स्ववर्तनी के अनेक उदाहरण भी देखने को मिलते हैं। इसके बाद औपचारिक शब्दों का उपयोग एवं भावना और अभिव्यक्ति के विकास के नमूने भी हम देख सकते हैं। इस किताब को पढ़ते हुए बाल लेखन पर व्यापक कार्य करने वाली ऐनी हास डायसन की अवधारणाएँ याद आती हैं। उनका मानना है कि बच्चे अपने शुरुआती लेखन में अनेक प्रकार की संकेत प्रणालियों का इस्तेमाल करते हैं। डायसन यह भी बताती हैं कि बच्चों के शुरुआती लेखन-प्रयासों का मूल्यांकन केवल लिखित शब्दों के आधार पर नहीं किया जाना चाहिए, बल्कि उनसे होने वाली बातचीत, उनके हाव-भाव, चित्रांकन, काल्पनिक खेल आदि को भी स्वीकृति देनी चाहिए। यह दृष्टिकोण भी इस किताब में अच्छे से उभरकर आता है।

किताब के लगभग हर पृष्ठ पर विभिन्न उदाहरणों के माध्यम से लाली के स्वाभाविक भाषायी और लेखन विकास को बहुत अच्छी तरह से दर्शाया गया है। इस किताब को पढ़ते हुए जब हम विद्यालयों, विशेषकर पूर्व-प्राथमिक कक्षाओं की शिक्षण-प्रक्रिया पर गौर करें, तो समझ में आता है कि वहाँ प्रायः पढ़ना-लिखना सीधे वर्णों, मात्राओं और शब्दों के अभ्यास से शुरू कराया जाता है। हालाँकि, हाल के वर्षों में प्रारम्भिक साक्षरता को लेकर विमर्श आगे बढ़ा है और बच्चों के मौखिक भाषा विकास, संवाद एवं कक्षा में भाषा-समृद्ध माहौल उपलब्ध कराने पर बल दिया जाने लगा है, लेकिन ये विचार अभी व्यापक रूप से शिक्षकों की शिक्षण-प्रक्रिया का हिस्सा नहीं बन पाए हैं। ऐसे में लगता है कि यह किताब एक महत्वपूर्ण सन्दर्भ-सामग्री के रूप में उपयोग में लाई जा सकती है।

भाषा-समृद्ध परिवेश का महत्व

किताब में कहीं भी प्रत्यक्ष रूप से यह नहीं बताया गया है कि लाली के साथ घर में पढ़ने-लिखने की प्रक्रियाएँ किस प्रकार की जाती थीं। फिर भी, किताब को गौर से पढ़ने पर यह अनुमान लगाया जा सकता है कि उसे घर में नियमित रूप से पुस्तकें पढ़कर सुनाई जाती होंगी, उन पर बातचीत होती होगी और किताबों से उसका निरन्तर सान्निध्य रहा होगा जिससे उसे इस तरह के भाषाई कौशल को विकसित करने का मौका मिला होगा। लाली का स्कूल में भी वर्णों, मात्राओं और प्रारम्भिक लेखन का औपचारिक शिक्षण चलता रहा होगा जिसने उसके सीखने की प्रक्रिया में अपनी भूमिका निभाई होगी। बाकी काम घर के संवादपूर्ण,

और साक्षरता-समृद्ध माहौल ने किए होंगे। यही विचार आज निपुण भारत मिशन में भी प्रमुखता से रेखांकित किया जाता है, जहाँ बच्चों के लिए भाषा-समृद्ध परिवेश को प्रारम्भिक साक्षरता का आधार माना गया है।

मैंने यह किताब आठ वर्ष की एक बच्ची को पढ़ने के लिए दी। बाद में जब मैंने उससे किताब को लेकर उसके अनुभव जानना चाहे तो उसने बताया कि किताब में लिखना सीखने की बात हो रही है और एक लड़की लिखना सीख रही है। इससे स्पष्ट होता है कि पुस्तक का मूल भाव बाल पाठकों तक भी प्रभावी ढंग से पहुँचता है।

इस किताब की लेखिका रश्मि पालीवाल *एकलव्य* फाउण्डेशन से लम्बे समय से जुड़ी रही हैं और वर्तमान में अज़ीम प्रेमजी विश्वविद्यालय में विज़िटिंग फैकल्टी के रूप में कार्य कर रही हैं। उनकी बाल विकास और बच्चों को सीखने–सिखाने की प्रक्रिया में गहरी रुचि रही है। उनकी यह गहरी रुचि इस बात से भी स्पष्ट होती है कि उन्होंने अपनी बेटी के लेखन और चित्रों को वर्षों तक सहेजकर रखा जो आज पाठकों के सामने एक महत्वपूर्ण किताब के रूप में उपलब्ध है।

इस किताब की सबसे अहम बात यह है कि इसे पढ़ते हुए हमें बच्चों के भाषायी विकास को समझने की एक खास दृष्टि मिलती है। जब हम इन बातों को सैद्धान्तिक रूप से पुस्तकों या प्रशिक्षण सामग्री में अमूर्त रूप में पढ़ते हैं, तो उनका सम्बन्ध बच्चों के वास्तविक सीखने-सिखाने की प्रक्रिया से सहजता से नहीं जोड़ पाते। यह किताब वो जुड़ाव बना पाती है।

चित्रकार रुचि महसाने के चित्र भी किताब को एक जीवन्तता प्रदान करते हैं। लाली द्वारा बनाई गई सामग्री से उन्होंने अच्छे से तालमेल बनाया है जिससे चित्रों में सजीवता आई है। आशा है, यह पुस्तक बच्चों के भाषायी विकास पर चल रहे विमर्श को समृद्ध करेगी और शिक्षक अपनी कक्षा के बच्चों के भाषाई विकास की प्रक्रिया को एक नए नज़रिए से देख सकेंगे।

कमलेश चन्द्र जोशी: प्राथमिक शिक्षा के क्षेत्र में कई संस्थाओं के साथ जुड़कर तीस वर्षों तक गहराई से कार्य किया। हाल ही में अज़ीम प्रेमजी फाउंडेशन, ऊधमसिंह नगर से सेवानिवृत। वर्तमान में लखनऊ में निवास व कुछ संस्थाओं के साथ जुड़कर स्वतन्त्र रूप से कार्य कर रहे हैं।

सभी चित्र किताब *तुम ऐसे लिखते हो? से* साभार।

किताब *तुम ऐसे लिखते हो?*, लेखक - रश्मि पालीवाल, प्रकाशक - एकलव्य फाउंडेशन, मूल्य - 90 रुपए।

प्रोफेसर शिरीन की याद में

रश्मि पालीवाल

प्रोफेसर शिरीन रत्नागर ने हमें जो सबक दिए, वे आज भी अक्सर याद आते हैं। हमारी स्थापित मान्यताओं को लेकर उन्होंने हमारे मन में ऐसी दुविधाएँ पैदा कीं कि हम दशकों तक उनसे जूझते रहे।

सामाजिक विज्ञान के स्कूली पाठ्यक्रम को कल्पित करने के काम की एक भ्रूणीय दुविधा थी - छात्र को ज़रूरी जानकारी देना या छात्र को जानकारी निर्मित करने देना - इनमें से कौन-से रास्ते को अपनाकर कक्षा में तर्क, विचार और ज्ञान-निर्माण के मौके बनाए जाने चाहिए। हमारे सबसे पहले दस्तावेज़ *अ बैकग्राउण्ड पेपर ऑन द टीचिंग ऑफ सोशल साइंसेज़ (1983)* में शिरीन के लिखे दो नमूने परिशिष्ट में शामिल हुए, और टक्कर में परिशिष्ट में शामिल था *बाल वैज्ञानिक* कार्य-पुस्तक का कक्षा-8 का एक पाठ। बैकग्राउण्ड पेपर में दोनों तरीकों की समीक्षा करते हुए खुलापन बनाए रखने का स्वर था, तो साफ तौर से आग्रह का ज़ोर विज्ञान वाले नमूने की ओर ही दिखता था। शिरीन के नमूने राजा अशोक के शिलालेख और नवदाटोली के उत्खनन की जानकारी को आधार बना रहे थे - जानकारी देने के साथ-साथ छात्रों को उस पर विचार, तर्क, अनुमान की क्रियाएँ करते हुए अतीत को उजागर करने में स्रोत की सीमाओं के प्रति सचेत बनने का अवसर दे रहे थे। हमारे सामने सवाल यह खड़ा था कि चाहे शुरुआत में ये नमूने उचित न ठहरें और छात्रों को अपने परिवार, गाँव-शहर की जानकारी खुद बटोरकर उस पर विचार करने का रास्ता उचित हो, लेकिन, देर-सवेर जानकारी देने की ज़रूरत तो होगी ही। इसलिए, वह कैसे दी जाए और उसका उपयोग किस शैक्षिक उद्देश्य के लिए किया जाए, यह खोजना क्या नितान्त ज़रूरी नहीं हो जाता है?

इस भ्रूण से शुरू करके हमने जो पाठ्यक्रम बनाया, उसका 25 वर्षों बाद एक व्यापक दस्तावेज़ तैयार हुआ - *सोशल साइंस लर्निंग इन स्कूल्स: पर्स्पेक्टिव्स एण्ड चैलेंजेज़ - (2010)*। इसमें हमने शिरीन का नए पाठ्यक्रम की कल्पना का प्रारम्भिक योगदान रेखांकित किया और अपने वे अनुभव और विचार स्वीकार किए जिनके चलते हम उनके सुझाव से हटकर राह बनाने को आगे बढ़े थे। उनकी दी हुई चेतावनी हमने फिर से स्वीकार की, दर्ज की। वह भ्रूणीय दुविधा हमारे कर्म का अभिन्न अंग

है - अगर आप लोग सचेत या अचेत रूप से मास्टर्स लेवल के ‘एंशिएण्ट सोसाइटीज़’ और ‘फ्यूडलिज़्म’ जैसे कोर्सों को स्कूली पाठ्यक्रम में तब्दील करने की कोशिश कर रहे हैं तो आप खतरा मोल ले रहे हैं। इस पर हमारा जवाब, हमारा स्पष्टीकरण हमने लिखा (पेज 54-55)।

ऐसी ही एक और दुविधा थी, हिन्दी भाषा के रूप को लेकर। अकादमिक विमर्श की बातों को शिक्षकों के लिए लिखने की हिन्दी कैसी होनी चाहिए... बोलचाल की, सरल, आम शब्दों वाली हिन्दी ही क्यों उनके लिए उपयुक्त समझी जानी चाहिए... क्या इस हिन्दी में अकादमिक विमर्श की विशेषता, सटीकता, कठोरता प्रस्तुत हो पाती है... क्या शिक्षकों को उससे जुड़ने का अवसर नहीं मिलना चाहिए...? यह दुविधा शिरीन ने हमारे सामने बड़े सशक्त रूप में खड़ी की थी।

हमें अपनी सहज, सरल हिन्दी में कठिन बातें व्यक्त करने की क्षमता पर अचूक भरोसा हो चला था। वे शिक्षकों के लिए भारतीय इतिहास के स्रोतों पर जो लेख लिख रही थीं, वे शुरू में अँग्रेज़ी में थे और हम उनका सरल हिन्दी में अनुवाद करके उनको दिखा रहे थे। जब उन्होंने पाया कि हम परिपक्व, विशिष्ट और सटीक हिन्दी की शब्दावली से सायास बच रहे हैं और उसके प्रति दुराग्रही हैं, तो उन्होंने हमारे हाथ से यह काम ही ले लिया! उन्होंने खुद हिन्दी सीखी और अपने निबन्ध हिन्दी में लिखे। हमें जो शॉक लगा था, उसका कम्पन आज भी महसूस होता है। और आज, कम-से-कम मैं तो समाज विज्ञान के अकादमिक लेखों के हिन्दी अनुवादों को जब जाँचती हूँ, तो उनकी शब्दावली और वाक्य रचना को धड़ल्ले से आम बोलचाल का बनाने से अपने-आप को रोकती हूँ। बहुत सोचकर ही विकल्प बनाती हूँ। मेरी यह लगातार की सचेतावस्था, शिरीन की देन है।

शिरीन को तहेदिल से श्रद्धांजलि... आशा है, उनको स्वीकार होगी।

रश्मि पालीवाल: 1983 से *एकलव्य* के साथ काम कर रही हैं। वे *एकलव्य* की सामाजिक विज्ञान टीम की सदस्य रही हैं जिसने मिडिल स्कूल के लिए नया पाठ्यक्रम विकसित किया। उन्होंने *एकलव्य* के फील्ड स्तर के कार्यक्रमों तथा प्रकाशन के कामों में भी योगदान दिया है। वे कई राज्यों के अलावा राष्ट्रीय स्तर पर पाठ्यपुस्तक विकास और शिक्षक विकास के प्रयासों में शामिल रही हैं। उन्हें बच्चों के साथ कहानियाँ पढ़ना और उनकी बातों पर गौर करना बहुत पसन्द है।

एक ताम्रपाषाण युगीन गाँव का जीवन निर्वाह

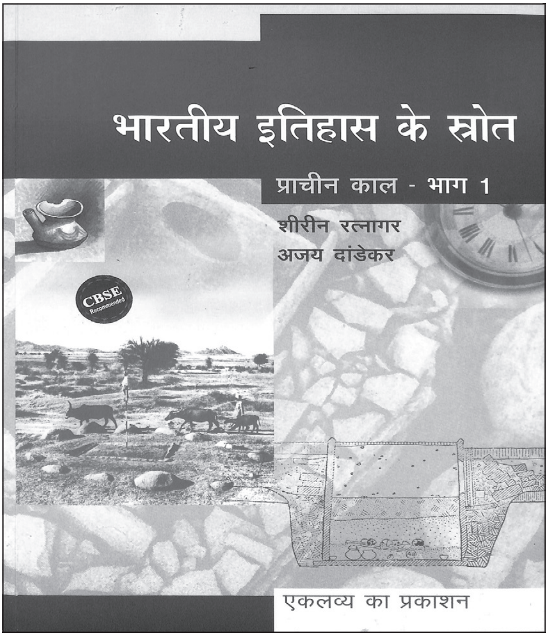

ईनामगाँव एक प्रागैतिहासिक स्थल है। वह समकालीन ईनामगाँव के पास, पुणे शहर से कुछ ही दूरी पर स्थित है। इस टीले का पता 1968 में लगा था जब उस पर बिखरे हुए ठीकरे 'मालवा' और 'जोर्वे' वर्ग के पुरावशेष के तौर पर पहचाने गए थे।

मालवा संस्कृति का दौर 1700 ई.पू. से 1300 ई.पू. तक माना जाता है। इस संस्कृति की पहचान एक विशिष्ट दफन पद्धति और एक खास तरह के मिट्टी के भाण्डों से बनती है। इसमें दो जुड़े हुए घड़ों में मृतकों को दफनाया जाता था। इस संस्कृति के अवशेष मध्य भारत और दक्कन के पठार पर पाए जाते हैं।

इसी इलाके में पनपा जोर्वे संस्कृति का दौर लगभग 1300 ई.पू. से 700 ई.पू. तक रहा था। इस संस्कृति की पहचान एक खास तरह के मिट्टी के बर्तनों से बनती है जो मालवा संस्कृति के बर्तनों से उन्नीस हैं।

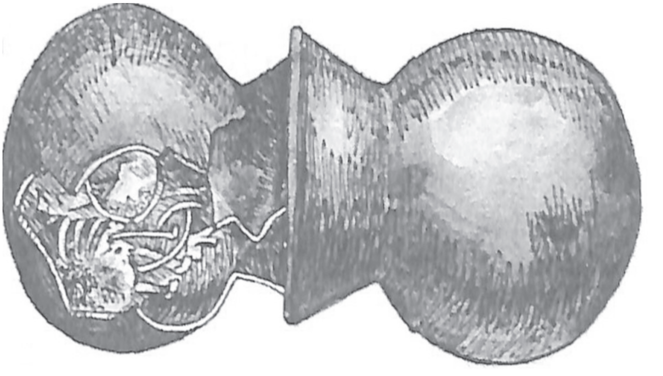

मालवा संस्कृति की विशिष्ट दफन पद्धति में दो जुड़े हुए घड़ों में मृतकों को दफनाया जाता था।

डेक्कन कॉलेज (पुणे) के प्रोफेसरों ने 1968 से 1983 तक, सर्दियों में, इस टीले की बारह बार खुदाई की। हमारे देश में बहुत ही कम पुरातात्विक स्थल हैं जहाँ पर इतनी लम्बी और धैर्यपूर्ण खोज हुई है। बौद्ध धर्म सम्बन्धित गंगा घाटी के स्थानों पर भी, खुदाई इतनी सीमित रही कि किसी एक टीले से बहुत कम घरों के सम्पूर्ण फर्श-क्षेत्र प्रकाश में लाए गए।* ईनामगाँव में करीब-करीब 137 कुटीरों के अवशेष खोदे गए जिनमें दीवारों की नींव, फर्श पर बिखरे हुए पुरावशेष, और झोपड़ियों के खाके शामिल हैं। इस प्रक्रिया में लगातार सुविज्ञ प्रश्न उठाए जाते रहे जिनके कारण शोधकार्य लम्बे समय तक जीवन्त बना रहा।

आपके मन में तुरन्त प्रश्न उठा होगा कि विद्वानों के लिए एक प्रागैतिहासिक टीले - मिट्टी, गिरी हुई दीवारें, ठीकरे, प्राचीन निवासियों के इधर-उधर बिखरे हुए कूड़े, गड्ढे वगैरह - से प्रश्न कैसे उत्पन्न होते होंगे?

पुरातत्व में हमें पुरातात्विक जानकारी गढ़नी पड़ती है, वह बनी-बनाई, टीलों में गड़ी हुई नहीं मिलती है। टीलों में केवल वस्तुएँ मिलती हैं। पुरातात्विक जानकारी के लिए हमें कई बातों के बारे में सोचना पड़ता है, जैसे पुरावशेषों को कैसे खोदा जाए, कैसे परखा जाए आदि। उदाहरण के लिए: पहले के पुरातत्वज्ञ खुदाई के बाद उन्हीं पुरावशेषों को जाँच के लिए रखते थे जो पूरे (यानी केवल

* *इसका एक कारण यह है कि गंगा घाटी के कई टीलों में ई.पू. पहली सहस्त्राब्दी के अवशेष परवर्ती (कुषाण-युगीन, मध्यकालीन आदि) परत के नीचे दबे हुए हैं और इन्हें प्राप्त करना कठिन है।*

मालवा कालीन बर्तन

जोर्वे कालीन बर्तन

कुछ टुकड़े नहीं) थे, या कलात्मक थे, या संग्रहालय में प्रदर्शन के लायक थे। वे 'कूड़े' - जैसे झुलसी हुई, कटी हुई भेड़ की हड्डियाँ या ताम्बे की कुठारी के टुकड़े या शंख की कतरनों का कूड़ा-करकट (शंख के फलक) नज़रअन्दाज़ कर देते थे। इसका यह परिणाम हुआ कि हम कई निष्कर्ष नहीं निकाल पाते थे, जैसे कि इस स्थल पर शंख की चूड़ियों की अधिक मात्रा का कारण क्या था या यहाँ पर क्या प्रागैतिहासिक निवासी चूड़ी बनाते थे?

एक और उदाहरण लें। एक टीले के नीचे वाली परत संस्कृति 'क' की है, और ऊपर वाली 'ख' की। इन दोनों के बीच क्या रिश्ता था, यह जानने के लिए हमें सामग्री का बारीक अध्ययन करना होगा। अगर एक परत में 'क' और 'ख', दोनों प्रकार के ठीकरे मिलते हैं तो पुरातत्वज्ञ को अन्दाज़ा हो जाता है कि 'क' से 'ख' तक का पारगमन धीरे-धीरे हुआ होगा। लेकिन इस तथ्य का सामाजिक सन्दर्भ क्या था? क्या एक ही घर में दोनों तरह के बर्तनों का उपयोग होता था? खुदाई के समय 'क' और 'ख' प्रकार के ठीकरों या बर्तनों के प्राप्ति-स्थान का व्यवस्थित विवरण करने पर हमें यह पता लग सकता है।

ठीकरों का प्रयोगशाला में विश्लेषण करने पर ही मालूम होगा कि 'क' और 'ख' में तकनीकी भेद है [जैसे, मृत्तिका का संयोजन, अलाव या आँवे (कुम्हार की भट्टी) का दहन और मृत्तिका का पकना] या इनके प्रयोजन भिन्न हैं।

ईनामगाँव की खुदाई के समय मुख्य शोध-समस्या थी, प्रागैतिहासिक अर्थव्यवस्था - खासकर जीवन-निर्वाह। टीले में 16 परतें उजागर हुईं और कुल मिलाकर 137 घरों के अवशेष प्राप्त हुए। इसके अलावा सभी प्रकार के पुरावशेषों की कई किस्म की जाँच हुईं। पत्थर के हथियारों की परख खुर्दबीन (microscope) से हुई जिससे पता चला कि इनका प्रयोग चमड़े पर हुआ था या लकड़ी पर (यह घिसने के निशान से ज्ञात होता है)। झोपड़ियों की अन्दरूनी और बाहरी मिट्टी के नमूनों का विश्लेषण प्रयोगशालाओं में हुआ क्योंकि पुरातत्वज्ञ जानना चाहते थे कि मिट्टी में पशु-खाद कितना मिलता है।

इससे ज्ञात होगा कि पशुओं को कहाँ रखा जाता था। पशुओं की हड्डियों की परख से पशु की प्रजाति के अलावा मरते समय उसकी आयु का भी अनुमान होता है। अलग-अलग पशुओं की हड्डियों की राशियों की तुलना हुई। इसलिए हम ईनामगाँव के भरण-पोषण की व्यवस्था पर सुविज्ञ निष्कर्ष निकाल पाते हैं, जबकि अन्य प्रागैतिहासिक स्थलों के सम्बन्ध में इस स्तर पर विश्लेषण सम्भव नहीं है। तो आपने समझ लिया होगा कि पुरातात्विक तथ्यों को पुरावशेषों से निर्मित किया जाता है।

इसके अलावा हमारे लिए एक और समस्या है। आधुनिक विचारधारा में तकनीकी एक महत्वपूर्ण तत्व होता है। हम विकसित तकनीकी वाले समाज को ही 'विकसित समाज' समझते हैं। अक्सर हम इतिहास के केवल अनुपयुक्त अंश का गुणगान गाते रहते हैं - जैसे विजय करने वाले राजाओं का। मेरा कहना है कि वास्तव में यह सहज और छोटा ग्रामीण समाज हमारे यशस्वी पूर्ववृत्त का एक प्रतीक है। इसका कारण आगे स्पष्ट होगा।

शिरीन रत्नागर (1944–2026): एक भारतीय पुरातत्त्वविद् थीं, जिनका कार्य मुख्य रूप से सिन्धु घाटी सभ्यता पर केन्द्रित था। वे कई पुस्तकों और शैक्षणिक पाठ्यपुस्तकों की लेखिका थीं।

अजय दांडेकर: ग्रेटर नोएडा स्थित शिव नादर इंस्टीट्यूशन ऑफ एमिनेंस (डीम्ड टू बी यूनिवर्सिटी) के इतिहास विभाग में अध्यापन करते हैं। आप शिरीन रत्नागर के छात्र रहे हैं।

यह अंश *एकलव्य* द्वारा प्रकाशित शिरीन रत्नागर और अजय दांडेकर की किताब *भारतीय इतिहास के स्रोत: प्राचीन काल - भाग 1* से साभार।

शासकीय स्कूलों का विलय और बन्द होना

अरविंद सरदाना और प्रियंता घोष

यह लेख मध्य प्रदेश की सरकारी स्कूल व्यवस्था में चल रहे संकट की बात करता है। बड़ी संख्या में शासकीय प्राथमिक व माध्यमिक शालाएँ बन्द की जा रही हैं। रिक्त स्थानों पर शिक्षकों की नियुक्ति नहीं हो पा रही है और आम आदमी का सरकारी स्कूलों पर से भरोसा कम होता जा रहा है। विद्यार्थियों की संख्या घटने के कारण वर्ष 2015-16 से 2024-25 के बीच 31,609 प्राथमिक और मिडिल स्कूल बन्द कर दिए गए। कई स्कूलों में ज़रूरत से ज़्यादा शिक्षक हैं, जबकि कई स्कूलों में शिक्षक ही नहीं हैं। इस संकट की ओर ध्यान खींचने के साथ-साथ यह लेख संकट से निपटने के लिए कुछ सुझाव भी प्रस्तुत करता है।

करीब दो साल पहले हमारी एक शिक्षक मित्र को यह बताया गया कि वे 'अतिरिक्त शिक्षक' बन गई हैं। हैरानी की बात यह थी कि जिस प्राथमिक स्कूल में वे पढ़ाती थीं, वहाँ पहले से ही दो शिक्षक थे और स्कूल बन्द होने की स्थिति में था। उसी दौरान एक अन्य शिक्षक ने अपने सम्पर्कों के बल पर उसी स्कूल में तबादला करवा लिया और हमारी मित्र को 'अतिरिक्त' बना दिया गया।

यह स्कूल शहर के पास, सड़क किनारे स्थित था, इसलिए वहाँ पोस्टिंग पाना लोगों के लिए आकर्षक माना जाता है। यह घटना दिखाती है कि किस तरह पैसे और प्रभाव के आधार पर तबादले किए जाते हैं, जबकि बच्चों और स्कूलों की ज़रूरतों को अक्सर नज़रअन्दाज़ कर दिया जाता है। पहले से ही परेशान शिक्षकों का मनोबल ऐसे फैसलों से और गिर जाता है।

सरकारी स्कूलों के बन्द होने और उनका आपस में विलय या 'मर्ज' करने की घटनाएँ उत्तर भारत के लगभग हर राज्य में देखी जा सकती हैं। जब स्कूल बन्द होते हैं तो बच्चों को दूर जाना पड़ता है, जिससे खासकर लड़कियों और गरीब परिवारों के बच्चों के स्कूल छोड़ने की आशंका बढ़ जाती है। शिक्षा का अधिकार कानून में बच्चों को घर के

पास स्कूल की व्यवस्था का प्रावधान है।

स्कूल मर्जर का असर स्कूल व्यवस्था पर साफ दिखता है। निजी स्कूलों, खासकर कम फीस वाले निजी स्कूलों की संख्या तेज़ी-से बढ़ी है। कुछ राज्य सरकारों ने इस बदलाव को गम्भीरता से लिया और सरकारी स्कूलों को मज़बूत करने की कोशिश की, लेकिन कई सरकारें इस स्थिति को नज़रअन्दाज़ करती रहीं। नतीजतन, सरकारी स्कूल धीरे-धीरे बहुत कमज़ोर होते चले गए।

स्कूल बन्द और विलय

मध्य प्रदेश में सरकारी स्कूलों के बन्द होने की खबरें लगातार समाचारों में आती रही हैं। राज्य सरकार ने इस रुझान से इनकार तो नहीं किया है, लेकिन इस बारे में कोई स्पष्ट और विस्तृत आँकड़े भी सार्वजनिक नहीं किए हैं। सरकार स्कूलों के बन्द होने को विलय (मर्जर) या युक्तियुक्तकरण (रेशनलाइज़ेशन) कहती है, जिससे वास्तविक स्थिति स्पष्ट नहीं होती।

यह लेख मध्य प्रदेश पर केन्द्रित है। इसमें पिछले बीस वर्षों में विद्यार्थियों की संख्या घटने के कारणों और सरकारी नीतियों की भूमिका पर ध्यान दिया गया है। मध्य प्रदेश का अध्ययन इसलिए भी ज़रूरी है, क्योंकि यहाँ देश में सबसे ज़्यादा

तालिका 1: *चयनित वर्षों में मध्य प्रदेश में स्कूल श्रेणी के अनुसार सरकारी स्कूलों की संख्या*

स्कूल श्रेणी	2012-13	2015-16	2019-20	2021-22	2024-25	अन्तर 2015-16 से 2024-25
प्राथमिक विद्यालय कक्षा (1-5)	83,405	83,880	63,,917	58,518	58,098	-25,782
माध्यमिक विद्यालय कक्षा (6-8)	29,228	30,316	12,741	7,411	7,270	-23,046
संयुक्त प्राथमिक विद्यालय कक्षा (1-8)	154	139	13,336	17,344	17,358	+17,219
कुल	1,12,787	1,14,335	89,994	83,134	82,726	-31,609

स्कूल बन्द किए गए हैं (नीति आयोग, 2021)।

मध्य प्रदेश के अलग-अलग वर्षों के आँकड़ों को देखा जाए तो सरकारी शिक्षा व्यवस्था में आए इस बड़े बदलाव की वास्तविक तस्वीर सामने आती है। तालिका-1 में पिछले दस वर्षों के प्राथमिक और मिडिल स्तर के सरकारी स्कूल हैं। दी गई तालिका से साफ दिखाई देता है कि प्राथमिक और मिडिल स्कूलों की संख्या में बड़ी गिरावट आई है।

मध्य प्रदेश के एक सामान्य गाँव में आम तौर पर एक प्राथमिक स्कूल होता है। मिडिल स्कूल प्रायः किसी एक बड़े या नोडल गाँव में होते हैं जहाँ आसपास के कुछ गाँवों के बच्चे आते हैं। पहाड़ी या बिखरी हुई बसाहट वाले क्षेत्रों में एक ही गाँव के लिए एक से अधिक प्राथमिक स्कूल भी होते हैं, ताकि अलग-अलग टोलों के बच्चों तक शिक्षा पहुँच सके।

फ्लैश स्टैटिस्टिक्स के अनुसार, वर्ष 2005 से 2015 के बीच सरकारी प्राथमिक और मिडिल स्कूलों का अनुपात लगभग दो से तीन के बीच बना रहा। पहले के वर्षों में कक्षा 1 से 8 तक के संयुक्त (कम्पोज़िट)

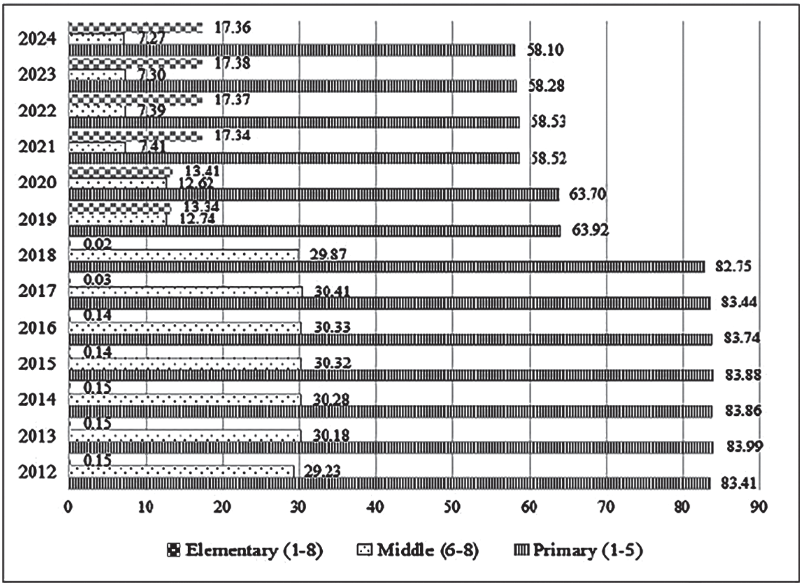

स्रोत : UDISE+

चित्र-1: वर्ष 2012-13 से 2024-25 के दौरान स्कूल श्रेणी के अनुसार (हज़ारों में) सरकारी स्कूलों की संख्या में बदलाव का रुझान। स्रोत: UDISE+

प्रारम्भिक विद्यालय बहुत कम थे। उदाहरण के लिए, वर्ष 2015-16 में मध्य प्रदेश में 80 हज़ार से अधिक प्राथमिक स्कूल और लगभग 30 हज़ार मिडिल स्कूल थे, जबकि कक्षा 1 से 8 तक के संयुक्त स्कूल केवल 139 ही थे (तालिका-1)।

वर्ष 2015-16 तक शिक्षा का अधिकार कानून के दबाव के कारण सरकारी स्कूल व्यवस्था का विस्तार होता रहा। चित्र-1 से भी यह स्पष्ट होता है कि 2012-13 से 2015-16 के बीच प्राथमिक और मिडिल स्कूलों की संख्या में बढ़ोतरी हुई थी। इस अवधि में प्राथमिक और मिडिल स्कूलों की कुल संख्या 1,12,787 से बढ़कर 1,14,335 हो गई थी।

नामांकन में आ रही गिरावट का रुझान चित्र-2 में दिखाया गया है। प्राथमिक स्तर पर यह गिरावट वर्ष 2010 के बाद तेज़ हुई है। सरकारी स्कूलों में बच्चों की संख्या तेज़ी-से घटने के कारण कई स्कूल ऐसे हो गए जहाँ बहुत कम बच्चे पढ़ते हैं और स्कूल पूरी तरह उपयोग में नहीं आ पा रहे हैं।

और ऐसे छोटे स्कूलों की संख्या बढ़ती गई, जहाँ बच्चों की तुलना में शिक्षक अधिक हो गए। 50 या उससे कम बच्चों वाले स्कूलों का प्रतिशत वर्ष 2005-06 में 23.2 प्रतिशत था, जो बढ़कर 2015-16 में 41.9 प्रतिशत हो गया (चित्र-3)।

प्रशासनिक युक्तियुक्तकरण

वर्ष 2019-20 से प्रशासन द्वारा स्कूलों के युक्तियुक्तकरण (रेशनलाइज़ेशन) की प्रक्रिया शुरू की गई। इसका असर तालिका-1 में दिखाई देता है - 2015-16 से 2024-25 के दस वर्षों

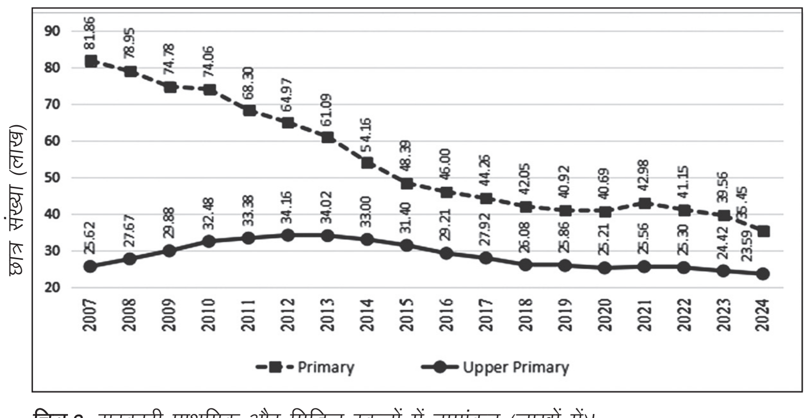

चित्र-2: *सरकारी प्राथमिक और मिडिल स्कूलों में नामांकन (लाखों में)।*
स्रोत: फ्लैश स्टैटिस्टिक्स (DISE), UDISE+

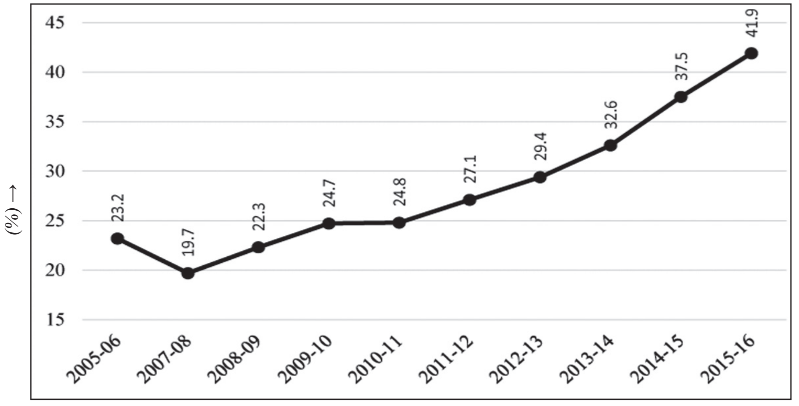

चित्र-3: 50 या उससे कम विद्यार्थियों वाले सरकारी स्कूलों का प्रतिशत।
स्रोत: फ्लैश स्टैटिस्टिक्स, DISE

के दौरान प्राथमिक स्कूलों की संख्या में 25,752 और मिडिल स्कूलों की संख्या में 23,046 की कमी आई।

इनमें से कई स्कूलों को आपस में मिलाकर 17,219 नए संयुक्त स्कूल (कक्षा 1 से 8) बनाए गए। पहले जहाँ नोडल गाँवों में प्राथमिक और मिडिल स्कूल अलग-अलग होते थे, अब उन्हें एक ही स्कूल में जोड़ दिया गया। लेकिन इसका कुल नतीजा यह रहा कि बच्चों की संख्या घटने के कारण 31,609 स्कूल वास्तव में बन्द हो गए। यह संख्या केवल प्रशासनिक पुनर्गठन नहीं बल्कि सार्वजनिक शिक्षा के सिकुड़ने का संकेत है।

स्कूलों की संख्या में आई इस गिरावट का बड़ा हिस्सा केवल एक-दो वर्ष में हुआ, यानी 2018-19 और 2019-20 के बीच (चित्र-1)।

सरकारी स्कूलों की बदलती सामाजिक संरचना (2000-2010)

इस सदी के पहले दशक में मध्य प्रदेश में निजी स्कूलों की ओर झुकाव तब शुरू हुआ, जब साधन सम्पन्न परिवारों और ऊँची जातियों के लोग सरकारी स्कूलों से निकलकर निजी स्कूलों में जाने लगे।

वर्ष 1995-96 में सबसे अधिक आय वाले वर्ग (सर्वोच्च 20 प्रतिशत) के 17.6 प्रतिशत बच्चे निजी स्कूलों में पढ़ते थे। यह अनुपात बढ़कर 2007-08 में 49.7 प्रतिशत हो गया था। यानी शिक्षा का अधिकार कानून लागू होने से पहले ही यह बदलाव काफी तेज़ हो चुका था (चित्र-4)। हालाँकि सबसे कम आय वाले वर्ग के बच्चों में भी निजी स्कूलों की ओर थोड़ा रुझान दिखाई देता है, लेकिन

उनकी संख्या में बढ़ोतरी बहुत सीमित रही।

इसी पहले दशक में सरकारी स्कूलों में बच्चों को आकर्षित करने के लिए मुफ्त पाठ्यपुस्तकें, साइकिल और मध्याह्न भोजन (MDM) जैसी सुविधाएँ शुरू की गईं। इसके साथ ही, बिना ज़्यादा चर्चा के, कम फीस वाले निजी स्कूलों को बढ़ावा देने की एक समानान्तर प्रक्रिया भी चलती रही। जैसे, मध्य प्रदेश में निजी स्कूल खोलने से जुड़े नियम और नियंत्रण लगभग खत्म कर दिए गए (लैक्लर्क, 2003)।

जब लगभग 2010 के आसपास शिक्षा का अधिकार अधिनियम और उसके राज्य स्तरीय नियम लागू हुए, तब सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले अधिकांश बच्चे अनुसूचित जाति (SC), अनुसूचित जनजाति (ST), अन्य पिछड़ा वर्ग (OBC) और बालिकाएँ थीं, जबकि अधिकतर शिक्षक ऊँची जातियों से थे।

- 89.2 प्रतिशत अनुसूचित जनजाति के बच्चे,
- 82.2 प्रतिशत अनुसूचित जाति के बच्चे,
- 71.8 प्रतिशत अन्य पिछड़ा वर्ग के बच्चे, और
- 52.2 प्रतिशत सामान्य वर्ग के बच्चे

राष्ट्रीय नमूना सर्वेक्षण (NSS) के 2007-08 के आँकड़ों के अनुसार, सरकारी स्कूलों में नामांकित हैं।

दूसरा दशक: 2010 के बाद छात्रों का सरकारी स्कूलों से पलायन

2010 के बाद राज्य सरकार की निष्क्रियता के चलते सरकारी स्कूलों से बच्चों का निकलना और तेज़ हुआ।

इस सदी के पहले दशक में प्रशासन ने बच्चों का नामांकन बढ़ाने

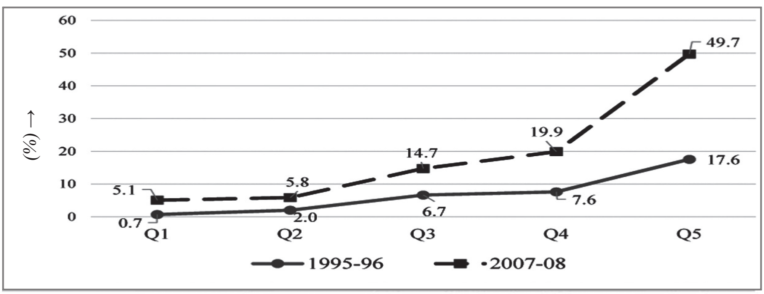

स्रोत : एनएसएस (विभिन्न चरणों) के आँकड़ों के आधार पर की गई गणना

चित्र-4: Q1 से Q5 का मतलब आय के पाँच बराबर हिस्से (Quintiles - क्विंटाइल) है। इसमें परिवारों को सबसे कम (Q1) से लेकर सबसे ज़्यादा (Q5) आय वाले समूहों में बाँटा गया है। ग्राफ में आय वर्ग के अनुसार प्राथमिक स्तर पर निजी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों का 1995-1996 एवं 2007-2008 का प्रतिशत दिखाया गया है।

के लिए अभियान चलाए थे और सर्व शिक्षा अभियान (SSA) की राशि का प्रभावी उपयोग किया गया था। लेकिन 2010 के बाद, जब बड़े पैमाने पर बच्चों के स्कूल छोड़ने के साफ संकेत दिखने लगे, तब न तो कोई नया अभियान चलाया गया और न ही लोगों का भरोसा दोबारा जीतने के लिए कोई ठोस प्रशासनिक कदम उठाए गए।

प्रशासनिक निष्क्रियता

- गाँवों में कम फीस वाले निजी स्कूलों द्वारा सरकारी स्कूलों के बच्चों को अपने यहाँ खींच ले जाने पर कोई रोक नहीं लगाई गई।
- प्रधानाध्यापकों और प्राचार्यों की सही नियुक्ति नहीं की गई और न ही राजनीतिक हस्तक्षेप को रोकने का कोई मज़बूत सन्देश दिया गया।
- शिक्षकों के अव्यावहारिक तबादलों और पढ़ाने में लापरवाही पर कोई प्रभावी नियंत्रण नहीं रखा गया।
- शिक्षकों को बार-बार गैर-शैक्षणिक कामों में लगाए जाने से यह संकेत मिला कि पढ़ाने से ज़्यादा महत्व दफ्तर के कामों को दिया जा रहा है।
- सरकारी स्कूलों और शिक्षकों के अच्छे काम को मान्यता नहीं मिली।
- स्कूलों की इमारत और सुविधाओं (शौचालय, पीने-का-पानी और बिजली) की लगातार अनदेखी ने बच्चों के स्कूल आने और शिक्षकों के मनोबल, दोनों को बहुत प्रभावित किया।
- वर्ष 2015–16 में उपलब्ध कक्षाओं की तुलना में लगभग 9 प्रतिशत अतिरिक्त कक्षाओं की ज़रूरत थी, जबकि 23 प्रतिशत कक्षाओं को मरम्मत की आवश्यकता बताई गई थी। इसके अलावा 64 प्रतिशत स्कूलों में चारदीवारी नहीं थी और 88 प्रतिशत स्कूलों में बिजली की सुविधा नहीं थी (बोस एवं अन्य, 2020; एनडीटीवी में अनुराग द्वारी की रिपोर्ट, 2025)।

स्थिति तब और खराब हुई जब स्कूल प्रशासन ने खुले तौर पर शिक्षकों को ही पढ़ाई न कराने और बच्चों के स्कूल छोड़ने के लिए ज़िम्मेदार ठहराना शुरू कर दिया। ऐसा लगने लगा जैसे स्कूल प्रशासन की खुद कोई भूमिका ही नहीं है – न शिक्षकों की पोस्टिंग में, न स्कूलों की निगरानी में।

शिक्षकों को 'दोषी' बताने की यह सोच, कुछ बदहाल स्कूलों के उदाहरणों के ज़रिए जनता के बीच और भी मज़बूत हो गई। चूँकि सरकारी शिक्षकों का वेतन निजी स्कूलों के शिक्षकों से कहीं अधिक होता है, इसलिए यह तर्क दिया जाने लगा कि शिक्षकों का नैतिक स्तर गिर गया है और स्कूल खराब हो गए हैं। इस पूरी बहस में स्कूल प्रशासन लगभग अदृश्य बना रहा। यह सच है

कि कुछ शिक्षक अपने दायित्वों का पालन नहीं करते, लेकिन जब नियमों का खुलेआम उल्लंघन हो, निगरानी व्यवस्था कमज़ोर हो और प्रधानाध्यापक रोज़मर्रा के काम भी ठीक से न करा पाएँ, तो स्कूलों का बिगड़ना स्वाभाविक है।

शिक्षकों को दोषी ठहराना आसान था, लेकिन प्रशासन ने समुदाय से संवाद करने, उनकी शिकायतें सुनने और स्कूलों को बेहतर बनाने के लिए कोई गम्भीर प्रयास नहीं किया। इस दोषारोपण की प्रक्रिया में चन्द बदहाल सरकारी स्कूलों का उदाहरण देकर खुद प्रशासन ने ही अपनी बदहाली की बात मज़बूत कर दी।

इसका नतीजा यह हुआ कि कहीं-कहीं स्कूलों में ईमानदार शिक्षक इस बदलाव को रोकने के लिए पूरी मेहनत से जूझते रहे। वहीं कुछ शिक्षक राजनीतिक संरक्षण लेकर अपनी स्थिति बचाने में लग गए और जो शिक्षक राजनीतिक तौर से प्रभावशाली थे, वे बेझिझक पढ़ाने की ज़िम्मेदारी से दूर रहे. और कुछ ने तो अपने परिवार के सदस्यों को निजी स्कूल खोलने में मदद भी की।

प्रशासन की इस निष्क्रियता से जनता का भरोसा टूटा और इसी के कारण बच्चे सरकारी स्कूलों से बाहर जाने लगे। इसके बाद स्थिति ऐसी हो गई कि कुछ बच्चों का बाहर जाना एक बाढ़ में तबदील हो गया और अन्य बच्चों के बाहर जाने की वजह बनता गया (हिर्शमैन, 1970)। राजनीतिक नेतृत्व ने शिक्षकों को दोषी ठहराते हुए इस बदलाव को 'लोगों की निजी स्कूलों के प्रति पसन्द' का नतीजा बता दिया। इस तरह सरकारी स्कूलों से बच्चों के बाहर जाने की असली वजह – भरोसे की कमी – को 'जनता की पसन्द बदलने' के तर्क में दबा दिया गया। और शिक्षा का अधिकार (RTE) कानून की मूल भावना लगभग समाप्त कर दी गई।

प्रशासन में दो मुँह वाली व्यवस्था

सरकारी स्कूलों से बच्चों के निजी स्कूलों में जाने के अलावा सरकारी शिक्षा व्यवस्था में भरोसे की दोहरी हानि हुई। एक ओर बहुत छोटे स्कूल बनते गए, जहाँ बच्चों की संख्या कम थी लेकिन शिक्षक अधिक थे। दूसरी ओर कई ऐसे स्कूल थे, जहाँ बच्चों की संख्या पर्याप्त थी, लेकिन शिक्षकों की भारी कमी थी। तालिका-2 में मध्य प्रदेश के प्राथमिक और मिडिल स्कूलों में शिक्षक कमी और शिक्षक अधिकता वाले स्कूलों का प्रतिशत दिखाया गया है।

तालिका से साफ पता चलता है कि वर्ष 2015-16 में लगभग 30 प्रतिशत प्राथमिक स्कूलों में शिक्षकों की कमी थी। मिडिल स्कूलों की स्थिति और भी गम्भीर थी, जहाँ 73.6 प्रतिशत स्कूलों में ज़रूरी संख्या में शिक्षक नहीं थे।

तालिका 2: मध्य प्रदेश में शिक्षक कमी और शिक्षक अधिकता वाले स्कूल (प्रतिशत में)। स्रोत: UDISE+ माइक्रो डेटा के आधार पर की गई गणना

स्कूल श्रेणी	2015-16	2018-19	2021-22	2024-25
शिक्षक कमी वाले सरकारी स्कूल (%)				
प्राथमिक विद्यालय कक्षा (1-5)	30.05	25.63	32.93	16.34
मध्यमिक विद्यालय कक्षा (6-8)	73.63	72.49	78.28	34.80
शिक्षक अधिकता वाले सरकारी स्कूल				
प्राथमिक विद्यालय कक्षा (1-5)	16.21	14.03	8.55	10.99
मध्यमिक विद्यालय कक्षा (6-8)	8.44	7.77	6.25	13.36

स्कूल प्रशासन ने इन्हें नज़रअन्दाज़ कर दिया। शहरी इलाकों और अपेक्षाकृत समृद्ध ज़िलों में मौजूद छोटे स्कूलों और अतिरिक्त शिक्षकों पर होने वाली सार्वजनिक चर्चा के शोर में, दूरदराज़ गाँवों और पिछड़े ज़िलों की समस्याएँ पूरी तरह दब गईं। छोटे स्कूलों में अतिरिक्त शिक्षकों की चर्चा ने उन स्कूलों की आवाज़ को अदृश्य कर दिया, जहाँ बच्चे तो पर्याप्त थे लेकिन शिक्षक नहीं थे।

RTE से जुड़े अध्ययन में हमने मध्य प्रदेश के दो बिलकुल अलग ज़िले, सिंगरौली और इन्दौर की तुलना की थी। सिंगरौली राज्य का एक दूरस्थ और पिछड़ा ज़िला है, जबकि इन्दौर अपेक्षाकृत शहरी और समृद्ध है। इन्दौर में सरकारी स्कूलों में छात्र-शिक्षक अनुपात (PTR) का औसत 22 और मध्य मान 20 था। वहीं सिंगरौली में प्राथमिक व मिडिल स्कूलों का मध्य मान PTR 40 और औसत PTR 51 था।

स्कूलों के विलय और बन्द करने की प्रक्रिया के ज़रिए प्रशासन ने अतिरिक्त शिक्षकों को उन स्कूलों में भेजने की कोशिश की, जहाँ शिक्षकों की ज़रूरत थी। कुछ हद तक यह किया भी गया, खासकर प्राथमिक और मिडिल स्कूलों को मिलाकर लगभग 17 हज़ार संयुक्त स्कूल (कक्षा 1-8) बनाए गए। लेकिन इतने

बड़े पैमाने पर सभी अतिरिक्त शिक्षकों का तबादला करना आसान नहीं था। इसका विरोध हुआ और फिर प्रशासन ने नियमों में बदलाव करके कस्बा या सड़क किनारे के स्कूलों में तबादला चाहने वाले शिक्षकों को 'समायोजित' करना शुरू कर दिया। तबादलों और संरक्षण की 'कीमत' और बढ़ गई। शिक्षा का अधिकार कानून सिर्फ कुल बच्चों और शिक्षकों की संख्या के अनुपात की बात नहीं करता; कानून में प्रति-कक्षा शिक्षकों की संख्या का भी ज़िक्र है।

जैसा कि शुरुआत में बताया गया, 18 बच्चों वाले छोटे-से प्राथमिक स्कूल में दो शिक्षकों के होते हुए भी एक अतिरिक्त शिक्षक की नियुक्ति कर देना, इस बात का उदाहरण है कि 'सब कुछ चलता है'। इस कारण शिक्षक अधिकता वाले स्कूलों से शिक्षक कमी वाले स्कूलों में तबादले सीमित ही रह गए, अतिरिक्त शिक्षक वाले स्कूल और कमी वाले स्कूल, दोनों अपने संकट से जूझते रहे। यही 'दो मुँह वाला संकट' है।

तालिका-3 से यह स्पष्ट होता है कि शिक्षकों के वितरण में शहरी और ग्रामीण क्षेत्रों के बीच लगातार असमानता बनी हुई है। शिक्षक अधिकता वाले स्कूल मुख्य रूप से शहरी क्षेत्रों जबकि शिक्षकों की कमी वाले स्कूल ग्रामीण क्षेत्रों में केन्द्रित हैं।

ग्रामीण स्कूलों में शिक्षकों की कुल कमी 2018−19 में 36.26 प्रतिशत थी जो बढ़कर 2021−22 में 46.95 प्रतिशत तक पहुँची। उसी अन्तराल में जबकि शहरी स्कूलों में शिक्षकों की

तालिका-3: *मध्य प्रदेश के ग्रामीण और शहरी क्षेत्रों में शिक्षक अधिकता और शिक्षक कमी वाले सरकारी स्कूल (प्रतिशत में)।*

स्रोत: UDISE+ माइक्रो डेटा के आधार पर की गई गणना

क्षेत्र	2015-16	2018-19	2021-22	2024-25
शिक्षक अधिकता वाले सरकारी स्कूल				
ग्रामीण	12.22	10.39	7.42	13.64
शहरी	29.04	26.18	29.47	29.81
शिक्षक कमी वाले सरकारी स्कूल				
ग्रामीण	39.56	36.26	46.95	22.51
शहरी	26.07	25.87	28.79	22.72

कमी 25.87 से बढ़कर 28.79 तक रही।

ऐसी ही स्थिति हमने दिल्ली के एक अध्ययन में भी देखी थी। दिल्ली के बाहरी शहरी इलाकों में, जहाँ कम आय वर्ग के लोग रहते हैं, वहाँ सरकारी स्कूल, जगह और शिक्षकों की भारी कमी से जूझ रहे थे (बोस एवं अन्य, 2021)।

नतीजा यह है कि कम फीस वाले निजी स्कूल ही लोगों के लिए तयशुदा विकल्प बनते गए।

जब तबादलों के ज़रिए शिक्षक अधिकता और शिक्षक कमी वाले स्कूलों के बीच की खाई नहीं भरी जा सकी, तब मध्य प्रदेश सरकार ने बड़े पैमाने पर अतिथि शिक्षकों की नियुक्ति शुरू कर दी। वर्ष 2023 में राज्य सरकार ने बताया कि प्रदेश में 72 हज़ार अतिथि शिक्षक कार्यरत हैं, जो कुल शिक्षक संख्या का लगभग एक-तिहाई हैं। यह व्यवस्था अब केवल अस्थायी समाधान नहीं रही, बल्कि कम वेतन पर काम करने वाले संविदा शिक्षकों की एक पूरी नई फौज बन गई है।

एक गम्भीर उदाहरण के तौर पर, खरगौन ज़िले के झिरनिया आदिवासी विकासखण्ड में 66 प्राथमिक स्कूल ऐसे हैं जहाँ कोई भी नियमित शिक्षक नहीं है, और 146 स्कूल ऐसे हैं जहाँ केवल एक शिक्षक कार्यरत है। यह इस विकासखण्ड के कुल प्राथमिक स्कूलों का 58.9 प्रतिशत है और ये सभी अतिथि शिक्षकों पर निर्भर हैं।

इस तरह शिक्षा व्यवस्था धीरे-धीरे फिर से अस्थायी और अनौपचारिक शिक्षण संसाधनों की ओर लौटती दिख रही है, जबकि शिक्षा का अधिकार (RTE) कानून का उद्‌देश्य ऐसी व्यवस्थाओं को समाप्त करना था।

क्या स्थिरता आ पहुँची?

सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों का कुल रुझान तालिका-4 में दिखाया गया है।

वर्ष 2012–13 में 66.60 प्रतिशत बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ते थे, और यह घटते-घटते 2019–20 में 56.72 प्रतिशत रह गया। लेकिन इसके बाद यह गिरावट रुकती हुई दिखाई देती है। 2021–22 में यह प्रतिशत 59.71 और 2024–25 में 57.51 रहा। इससे संकेत मिलता है कि पहले जो तेज़ गिरावट थी, वह अब एक पठार पर पहुँच गई है और सरकारी स्कूलों में नामांकन फिलहाल अपेक्षाकृत स्थिर हैं।

इसके विपरीत, बिना सहायता प्राप्त निजी स्कूलों में पढ़ने वाले बच्चों का हिस्सा 32.29 प्रतिशत से बढ़कर 2019–20 में 42.69 प्रतिशत हो गया। इसके बाद इन स्कूलों में नामांकन में केवल हल्का उतार-चढ़ाव देखने को मिला और यह लगभग 40–42 प्रतिशत के आसपास

तालिका-4: मध्य प्रदेश में स्कूल प्रबन्धन के अनुसार विद्यार्थियों का प्रतिशत।
स्रोत: UDISE+

स्कूल प्रबन्धन	2012-13	2015-16	2019-20	2021-22	2024-25
सरकारी स्कूल	66.60	62.98	56.72	59.71	57.51
सहायता प्राप्त निजी स्कूल	1.11	0.79	0.59	0.47	0.38
बिना सहायता वाले निजी स्कूल	32.29	36.23	42.69	39.82	42.11

स्थिर हो गया। यह स्थिरता आने के कुछ सम्भावित कारण हैं। बिना सहायता वाले निजी स्कूलों में फीस बहुत अधिक है और ग्रामीण व पिछड़े ज़िलों के कई अभिभावक यह वहन नहीं कर सकते। वर्ष 2025 की एनएसएस रिपोर्ट (भारत सरकार, 2025) के अनुसार, मध्य प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में स्कूल शिक्षा पर पालकों द्वारा प्रति छात्र औसत खर्च सरकारी स्कूलों में 2,435 रुपए है, जबकि निजी स्कूलों में यह 18,099 रुपए है। इसलिए निजी स्कूल बड़े पैमाने पर ग्रामीण क्षेत्रों या पिछड़े ज़िलों में प्रवेश नहीं कर पाए हैं। वे समझते हैं कि कृषि से जुड़े जोखिमों और सीमान्त किसानों व मज़दूरों की कम आय के कारण ग्रामीण आय अस्थिर रहती है।

मध्य प्रदेश के अनुभव से सीख

भरोसा बहाल करना है, तो शुरुआत उन क्षेत्रों से करनी होगी जहाँ अभाव है। इन इलाकों में माँग तो मौजूद है, लेकिन शिक्षकों, कक्षाओं या स्कूल प्रशासन की व्यवस्था पर्याप्त नहीं है। यदि स्कूल-विशेष की इन समस्याओं का समाधान किया जाए, तो भरोसा बनेगा। मध्य प्रदेश के सन्दर्भ में, स्कूल प्रशासन को शिक्षकों को दोष देना बन्द करके, गाँव या स्थानीय स्तर पर बैठकें कर जनता की शिकायतों को सम्मानपूर्वक सुनना चाहिए।

ग्रामीण क्षेत्रों और पिछड़े ज़िलों में बड़ी संख्या में ऐसे स्कूल हैं जहाँ शिक्षकों की कमी और बुनियादी ढाँचे की समस्याएँ गम्भीर हैं। यह समझना ज़रूरी है कि मध्य प्रदेश के ग्रामीण क्षेत्रों में सरकारी और निजी स्कूलों में नामांकन का अनुपात 75:25 है, जबकि शहरी क्षेत्रों में यह 40:60 है (भारत सरकार, 2025)। इसका अर्थ यह है कि यदि ग्रामीण मध्य प्रदेश में शिक्षकों की कमी और बुनियादी ढाँचे की समस्याओं को दूर किया जाए, तो व्यवस्था में भरोसा दोबारा बनाया जा सकता है। ग्रामीण मध्य प्रदेश में उच्च

विद्यालय स्तर पर 80.8 प्रतिशत छात्र सरकारी स्कूलों में पढ़ते हैं (भारत सरकार, 2025), जो दर्शाता है कि उच्चतर स्तर पर सरकारी स्कूलों में भरोसा काफी हद तक अभी भी बना हुआ है। इसलिए पहला कदम ग्रामीण क्षेत्रों और पिछड़े ज़िलों पर ध्यान देना होना चाहिए। ध्यान न दिया गया तो गम्भीर परिणाम हो सकते हैं, क्योंकि अन्ततः छात्र स्कूल छोड़ सकते हैं। सरकारी स्कूलों में पढ़ने वाले छात्रों को यह महसूस नहीं होना चाहिए कि वे एक दरकती व्यवस्था का हिस्सा हैं और आर्थिक मजबूरियों के कारण असहाय हैं।

ग्रामीण क्षेत्रों में ओबीसी समूहों की राजनीतिक दखल मज़बूत है और उनकी 'आवाज़' को व्यवस्था में बनाए रखना ज़रूरी है। इस बात को विभिन्न तरीकों से दोहराया गया है। एक ओर, हर्शमैन (1970) का तर्क है कि सार्वजनिक सेवाओं में मध्यम वर्ग की 'आवाज़' को बनाए रखना आवश्यक है क्येंकि वो ही व्यवस्था को चुनौती देते हैं, अन्यथा एक के बाद एक लोग बाहर निकलते जाएँगे और सार्वजनिक व्यवस्था ढह सकती है। इसी तरह, इलाहाबाद उच्च न्यायालय ने शिव कुमार पाठक एवं अन्य बनाम उत्तर प्रदेश राज्य एवं अन्य (2015) के फैसले में सुझाव दिया कि उत्तर प्रदेश में सरकारी स्कूलों में सुधार का एक तरीका यह है कि सभी स्तरों के अधिकारियों को मिलने वाला शिक्षा भत्ता इस शर्त के साथ जोड़ा जाए कि उनके बच्चे सरकारी स्कूलों में पढ़ें। इससे इन स्कूलों का प्रशासन बेहतर होगा, क्योंकि उनकी भागीदारी और हस्तक्षेप स्वाभाविक रूप से बढ़ेंगे।

हार्मा (2009) का मत है कि "अभिभावक एक बेहतर सरकारी व्यवस्था को प्राथमिकता देंगे, क्योंकि लगभग आधे लोग कम शुल्क वाले निजी स्कूलों का खर्च वहन नहीं कर सकते, और बाज़ार सार्वभौमिक व सामाजिक रूप से उचित स्तर की सेवाएँ उपलब्ध नहीं करा पाता। इसलिए प्राइवेट स्कूल के बाज़ार पर निर्भर रहने की बजाय जवाबदेही को मूल सिद्धान्त बनाकर सरकारी व्यवस्था में सुधार करना सामाजिक रूप से अधिक उपयुक्त है।" आज हाशिए के समूहों द्वारा कम शुल्क वाले निजी स्कूलों को चुनना दरअसल मजबूरी में लिया गया निर्णय है।

सरकार को यह स्पष्ट राजनीतिक संकेत देना होगा कि 'स्थानान्तरण उद्योग' पर रोक लगेगी। इसके साथ ही सक्षम लोगों को स्कूलों का प्राचार्य नियुक्त करना और उन्हें प्रशासनिक स्वतंत्रता देना आवश्यक है, ताकि स्कूलों का संचालन सुचारु हो सके और उन्हें अनावश्यक राजनीतिक हस्तक्षेप से सुरक्षा मिले।

मध्य प्रदेश को बड़ी संख्या में अतिथि शिक्षकों के सहारे स्कूल चलाने की प्रथा समाप्त करनी होगी,

जिन्हें अस्थायी मज़दूरों की तरह रखा जाता है। ग्रामीण क्षेत्रों पर विशेष ध्यान देते हुए नियमित शिक्षकों की भर्ती करना व्यवस्था में भरोसा बनाने के लिए अनिवार्य है। एक सुझाव यह भी है कि शिक्षकों की नियुक्ति किसी सामान्य कैडर की बजाय विशिष्ट स्कूलों में की जानी चाहिए, ताकि एक-दो साल में 'मनचाही' जगह पर स्थानान्तरण की प्रवृत्ति पर रोक लग सके।

मध्य प्रदेश की नीति का केन्द्र फिलहाल सीएम राइज़ स्कूलों (अब सांदीपनी स्कूल) पर है। अलबत्ता इनकी पहुँच सीमित है – कुल 369 स्कूल; और इनमें से भी कुछ अभी निर्माणाधीन हैं। इन्हें सभी सरकारी स्कूलों के विकल्प के रूप में प्रचारित किया गया, लेकिन सरकार को प्राथमिकताओं में सन्तुलन बनाते हुए सामान्य सरकारी स्कूलों के सुधार पर ध्यान देना चाहिए। भरोसा बहाल करने के लिए, शीर्ष नौकरशाही और राजनीतिक वर्ग को इस मानसिकता से बाहर निकलना होगा कि सामान्य सरकारी स्कूली शिक्षा में सुधार सम्भव नहीं है, और निजीकरण ही इसका समाधान है। कई वर्ष पहले शिक्षक अक्सर कहते थे कि जिस तरह मध्य प्रदेश ने सार्वजनिक परिवहन व्यवस्था बन्द की, उसी दिशा में सार्वजनिक शिक्षा भी की जा रही है। तब यह बात अतिशयोक्ति लगती थी, लेकिन आज इसकी गूँज एक गम्भीर चेतावनी की तरह सुनाई देती है।

अरविंद सरदाना: सामाजिक विज्ञान समूह, *एकलव्य* से सम्बद्ध रहे हैं। लम्बे समय तक एनसीईआरटी एवं अन्य राज्यों की पाठ्यपुस्तकों की निर्माण प्रक्रियाओं से जुड़ाव रहा है। साथ ही, शिक्षक प्रशिक्षण के काम में सक्रिय रहे हैं।

प्रियंता घोष: अर्थशास्त्र के शिक्षक हैं और शिक्षा तथा सार्वजनिक नीतियों से जुड़े शोधकार्य कर चुके हैं।

आभार: डॉ. अमन मदान और टुलटुल बिस्वास के उपयोगी सुझावों के लिए उन्हें धन्यवाद देते हैं।

लेख में उल्लेखित आँकड़ों और जानकारी के स्रोत जानने के लिए नीचे दी गई लिंक देखें या दिए गए QR code को स्कैन करें।

https://www.eklavya.in/resources/sandarbh-article-references/5738-sandarbh-166-school-marger

ट्रॉय का घोड़ा

जयंत विष्णु नारलीकर

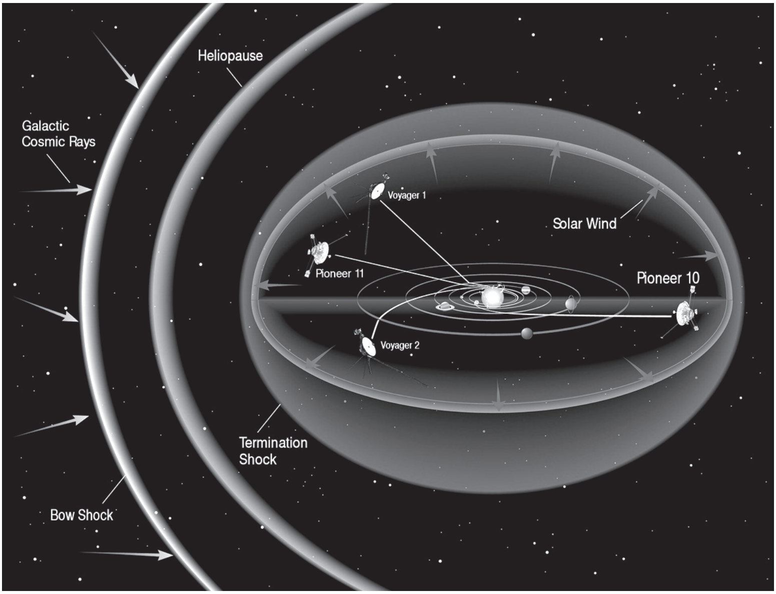

जैकसन के कण्ट्रोल पैनल की लाल बत्ती जल उठी। साथ ही बीप.... बीऽऽऽ...प... बीप की आवाज़ भी आई। कण्ट्रोल का ध्यान आकर्षित करने हेतु यह सावधानी थी।

जैकसन अपने तीन सहकर्मियों के साथ स्पेस-सेंसर-6 (SS-6) से पृथ्वी की परिक्रमा कर रहा था। अन्तरिक्ष में गुप्तचरी करने का काम उन्हें सौंपा गया था। प्रत्येक की ड्यूटी साढ़े छः घण्टे की होती। इन प्रत्येक साढ़े छः घण्टों के दौरान पहले तथा आखिरी तीस मिनट मौजूद रहते - दो लोग। एक वह जिसकी ड्यूटी खत्म होने को है और दूसरा वह जिसकी ड्यूटी शुरू हो रही है। कोई अत्यन्त विशेष स्थिति होने पर ही इसमें बदलाव की अनुमति थी।

क्या इस समय ऐसी परिस्थिति निर्माण हो गई थी? लाल बत्ती तथा सिग्नल की आवाज़ इसी बात का संकेत दे रहे थे कि पृथ्वी के

परिमण्डल में किसी अज्ञात वस्तु ने प्रवेश किया है।

सन् 2050 की बात है। बहुत सारे अन्तरिक्ष यान पृथ्वी की परिक्रमा कर रहे थे। अधिकतर यानों को SS अन्तरिक्ष यान के कम्प्यूटर गणकयंत्र ने दर्ज कर लिया था। यदि दर्ज किए गए के अलावा कोई नया यान उस क्षेत्र में आता तब लाल बत्ती जल उठती थी। साइरन बजता था। अमूमन ऐसा होता नहीं था क्योंकि विभिन्न राष्ट्रों के जो 'गुप्त यान' भी अन्तरिक्ष में चक्कर काट रहे थे, उन सभी की जानकारी बेशक SS-यानों के पास नहीं थी परन्तु इसकी समस्त जानकारी, पृथ्वी पर स्थित युनाइटेड स्पेस फेडरेशन (USF) के विशाल गणकयंत्र में अवश्य दर्ज होती थी। इसे गुप्त रखा जाता था। इसकी गोपनीयता बनाए रखने हेतु प्रत्येक राष्ट्र का अपना निजी संकेत (शब्द अथवा अंक के रूप में) तय रहता था। इसके फलस्वरूप हरेक राष्ट्र को अपने यान की जानकारी USF में दर्ज करवाना अनिवार्य था। अनुमति के बगैर अन्तरिक्ष में यान छोड़ने पर मनाही थी... यदि दर्ज न किया गया यान अन्तरिक्ष में पाया गया तो उसे भस्म कर देने का अधिकार USF को था।

जैक्सन ने इस अपरिचित यान के बारे में पृथ्वी पर स्थित USF के कम्प्यूटर को सन्देश देकर जानकारी चाही। तुरन्त वहाँ से जवाब आया।... इस यान का पंजीयन हमारे यहाँ नहीं है।

बस... यहीं से यह किस्सा आरम्भ हो गया।

जैक्सन ने अपने दोनों जागृत सहकर्मियों को बुलवाया। उनके नाम थे, गुप्ता तथा टाकेनो। SS-6 का चौथा प्रवासी नागोविच खर्राटे भर रहा था।

जैक्सन ने उन दोनों को स्थिति से अवगत करवाया और कहा, "USF के लोगों ने तमाम राष्ट्रों को हिदायत दी है कि यदि यह अनाधिकृत यान, किसी राष्ट्र-विशेष का है तो वह तुरन्त स्वीकार करे, वरना अगली कारवाई के लिए तैयार रहे।"

"ऐसा पहले तो कभी नहीं हुआ था। देखें क्या सूचना आती है।" गुप्ता ने कहा। जैक्सन के बाद उसकी ही ड्यूटी थी।

सभी बड़ी उत्सुकता से इन्तज़ार करते रहे।

* * *

जिनेवा के USF के हेडक्वार्टर में ऊपरी तौर पर यही जान पड़ रहा था कि सारा कामकाज व्यवस्थित रूप से चल रहा है परन्तु अन्दर जो हड़कम्प मचा था, उसे सिर्फ कुछ गिने-चुने लोग ही जानते थे। समस्त राष्ट्रों के प्रतिनिधियों की एक आपात बैठक का आयोजन किया गया था। सभा के अध्यक्ष ने कहा, "दोस्तो, पृथ्वी के निकट एक अज्ञात यान आ गया है। किसी भी राष्ट्र ने इसकी ज़िम्मेदारी

स्वीकार नहीं की।” प्रतिनिधियों के बीच शुरू हो गई कुलबुलाहट एवं बुदबुदाहट को रोकते हुए उन्होंने आगे कहा, “पंजीयन की प्रक्रिया को आरम्भ किए तीस वर्ष हो गए। शुरू में कुछ राष्ट्रों ने सहयोग नहीं दिया था परन्तु उसके दुष्परिणामों को उन्हें भुगतना पड़ा था। दर्ज न किए गए उनके यान नष्ट कर दिए गए। पिछले बीस वर्षों में आज-सी स्थिति कभी भी नहीं आई थी। अत: हम सभी को निर्णय करना है कि इस नए यान का क्या किया जाए। समय बहुत कम है।”

“किस मार्ग से आ रहा है यह यान?” एक प्रतिनिधि ने पूछा।

“SS-6 की जानकारी के मुताबिक, वह मंगल तथा पृथ्वी की कक्षाओं के दरम्यान है और पृथ्वी की ओर आ रहा है। आपकी डेस्क पर रखे टी.वी. के स्क्रीन पर, मैं यान की कक्षा को दिखाता हूँ।” अध्यक्ष बोले।

“मेरी जानकारी एवं अन्दाज़ के अनुसार, यह यान कल चन्द्रमा की कक्षा के अन्दर पहुँच जाएगा और दो दिन में वह SS यानों की कक्षा तक आ पहुँचेगा।” एक वैज्ञानिक ने कहा।

“आपका अन्दाज़ा बिलकुल सही है। डॉ. फ्लेमिंग!” USF के सेक्रेटरी ने प्रशंसा से कहा। आज छोटे-छोटे कम्प्यूटर एवं कैलकुलेटर्स के ज़माने में अपने दिमाग में हिसाब लगाने वाले लोग बिरले ही हैं। अगर डॉ. फ्लेमिंग आज से एक सदी पहले भी होते तब भी बेजोड़ ही होते। फिर सेक्रेटरी ने कम्प्यूटर पर मिली यान की जानकारी से सभी को अवगत करवाया। प्रतिनिधियों के बीच मंत्रणा एवं विवाद आरम्भ हो गए। कोई भी स्पष्ट मत सामने नहीं आ रहा था। अन्त में डॉ. फ्लेमिंग बोले, “हमारे पास दो विकल्प हैं। पहला यह कि किसी अस्त्र के द्वारा यान को नष्ट कर दिया जाए। यह कम खतरे वाला अत्यन्त सरल उपाय है परन्तु मुझ जैसे वैज्ञानिक विचार वाले व्यक्ति को, यह विकल्प कदापि पसन्द नहीं। यह यान कहाँ से आया है, इसके अन्दर क्या है आदि बातों को जाने बगैर इसे नष्ट कर देना, हाथ आए अवसर को गँवा देने जैसी बात होगी। मेरे विचार से यह यान पृथ्वी के बाहर से आया है। हम इसका अवलोकन करेंगे। यदि खतरा महसूस हुआ तो नष्ट भी कर देंगे। नष्ट कर देने का कारण पर्याप्त और अन्तिम विकल्प होना चाहिए।”

“यदि अवलोकन के दरम्यान खतरा पैदा हो जाए तब?” अनेक लोगों के मन में उठ रही आशंका को अध्यक्ष ने कह डाला।

“उस खतरे को स्वीकारना होगा।” डॉ. फ्लेमिंग बोले।

“हर मोड़ पर खतरों से जूझकर ही मानव ने यह सफलता पाई है। खतरे का सामना दिमागी तौर पर अत्यन्त सावधानी बरतकर ही करना होगा। जैसे... इस नए यान का रिमोट सेंसिंग चित्रांकन कर लेने में क्या हर्ज़ है?”

स्पेस-सेंसर के प्रमुख ने इस प्रस्ताव का अनुमोदन किया। SS यान के सभी सदस्य निडर और साहसी थे। उन्हें दुख इसी बात का था कि खतरे वाला कोई काम करने का मौका, उन्हें मिल नहीं पाया था।

"हाँ... ना..." करते-करते अन्त में डॉ. फ्लेमिंग का प्रस्ताव मान लिया गया।

* * *

"बड़े भाग्यवान हो गुप्ता तुम!" जैक्सन ने कहा। हम यहाँ चक्कर पर चक्कर लगाते रहेंगे और तुम आराम-से 'एक्स' की तस्वीरें उतारोगे।" यान को 'एक्स' नाम दिया गया था।

"अपना-अपना नसीब है।" बड़ी शान्ति से गुप्ता ने कहा। "बात सिर्फ इतनी है कि जब तस्वीरें उतारने का निर्णय किया गया, तब मेरी ड्यूटी लगी हुई थी।"

एक स्पेस कैप्सूल में उसने रिमोट सेंसिंग चित्रांकन के लिए आवश्यक सब सामान रख लिया। दो दिनों तक चल सके, इतना खाने-पीने का सामान रखा तथा आत्मरक्षा के लिए कुछ हथियार भी रख लिए। टाकेनो को चार्ज दिया और वह निकल पड़ा।

स्पेस केप्सूल यानी एक छोटा-सा यान ही था जो वज़न में बहुत हल्का था। उसे बहुत कम रॉकेट पॉवर की ज़रूरत थी। एक सप्ताह चले, इतना ईंधन उसमें होता था। छोटी-मोटी

उड़ानों के लिए उसे उपयोग में लाया जाता था। गुप्ता ने अपने कन्ट्रोल कम्प्यूटर में भ्रमण कक्षा की जानकारी भर दी और केप्सूल को SS यान से अलग कर तेज़ी-से अन्तरिक्ष में आगे बढ़ा दिया। उनके हिसाब से 'एक्स' यान से मुलाकात होने में अभी अठारह घण्टे बाकी थे। घड़ी में आठ का अलार्म लगाकर उसने सोने की तैयारी कर ली।

नियत समय पर उनके टी.वी. स्क्रीन पर 'एक्स' दिखाई दिया। एक किलोमीटर की दूरी रह जाने पर उसने अपने यान (कैप्सूल) की दिशा बदल दी और उसी दूरी को बनाए रखते हुए 'एक्स' के चारों ओर चक्कर लगाने की तैयारी कर ली। नया अजनबी यान छोटा था। उसे लगा कि इसे पहले कहीं देखा अवश्य है। पर याद न आया... कहाँ देखा है।

उसने रिमोट सेंसिंग चित्रांकन की सामग्री बाहर निकाली।

* * *

"**कितना** अनोखा संजोग है यह।" गुप्ता द्वारा भेजी गई तस्वीरों को देखते हुए डॉ. फ्लेमिंग ने कहा। वे अपने सहकर्मियों की ओर मुड़े और बोले, "क्या आप लोग पहचानते हैं इस यान को?" फिर सहकर्मियों के चेहरे पर आए कौतूहल को देखकर वे बोले, "अरे! तुम आज के युवक, कभी पुराने साहित्य को पढ़ते हो भी या नहीं? यदि पढ़ते होते तो बात साफ समझ में आ जाती! दोस्तो, यह पृथ्वी का ही यान पायोनियर-10* है। सन् 1972 में इसे पृथ्वी से छोड़ा गया था। हमारा ग्रहमण्डल पार कर वह आकाश गंगा में अन्य सितारों के बीच चला गया था जो आज लौट आया है।"

"किस लिए भेजा था यह यान?" एक सहकर्मी ने पूछा।

"एकाध यात्री अपनी सारी जानकारी एक कागज़ पर लिखकर बोतल में रखकर विशाल सागर में किस लिए फेंक देता है? शायद इसलिए कि कोई उस बोतल को देखे और खोजता हुआ उस तक पहुँच सके... शायद ठीक वही बात यहाँ भी है।"

फिर डॉ. फ्लेमिंग लाइब्रेरी से पायोनियर-10 की जानकारी वाले दस्तावेज़ ले आए और बोले, "देखिए! बाहर से ली गई ये तस्वीरें मूल यान से हूबहू मेल खाती हैं। और ये तस्वीरें देखिए, जिन्हें एक्स तथा गामा किरणों की मदद से लिया गया, जो यान के अन्दरूनी भाग की हैं। यह समूची सामग्री पायोनियर-10 की ही है।"

"और यह चित्रांकित फलक किस

* *पायोनियर-10 नामक यान 3 मार्च, 1972 के दिन केप केनेडी से छोड़ा गया था। 3 दिसम्बर, 1973 के दौरान वह गुरु के निकट था। हमारा ग्रहमण्डल पार कर वह बहुत दूर निकल जाए, इस प्रकार का आयोजन किया गया था।*

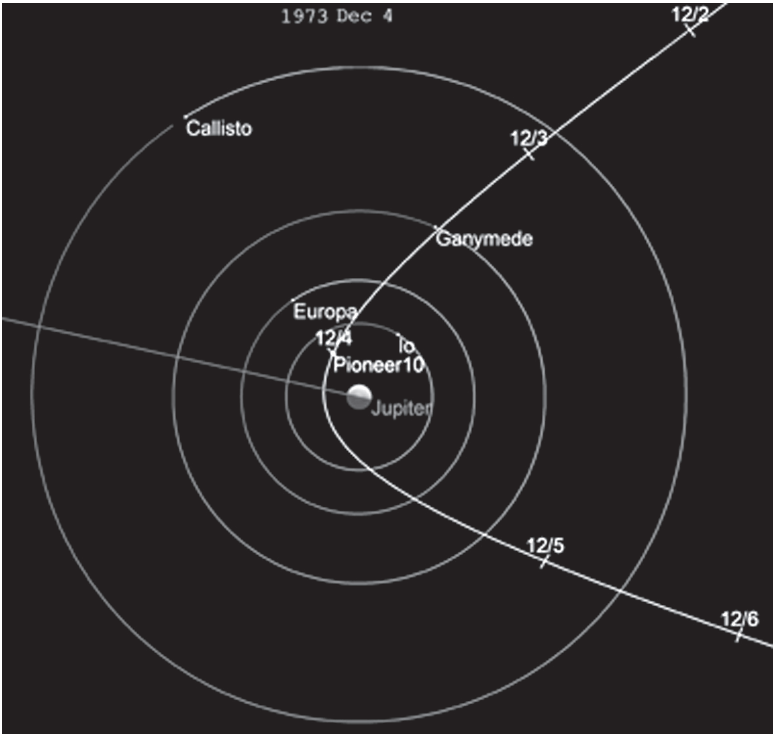

लिए है?" एक सहकर्मी ने पूछा। जो भय डॉ. फ्लेमिंग के मन में था, वही भय सबके मन में था।

"बोतल में पाई जाने वाली जानकारी की तरह, इस फलक पर अपनी पृथ्वी से सम्बन्धित जानकारी बाइनरी कोड (यानी 1 तथा 0 पर आधारित गुप्त सन्देश) में दी गई है। देखिए... जहाँ से यान निकला, वह हमारा ग्रह है जो सूर्य के बाद तीसरे नम्बर पर है। सूर्य का स्थान पल्सर्स तारों की दिशा के द्वारा दिखाया गया है। पृथ्वी पर मौजूद स्त्री-पुरुषों को दिखाया गया है।" यान के अन्दर ठीक वैसा ही फलक था।

"पर, यह यान एक इतना लम्बा चक्कर लगाकर लौट आएगा, क्या ऐसी व्यवस्था की गई थी?"

"बिलकुल नहीं। इसीलिए मैंने शुरू में ही इसे संजोग कहा था। पर लगता है, मैं गलत था। यान का वापस आना, मात्र संजोग नहीं कहा जा सकता।" डॉ. फ्लेमिंग सोचते हुए बोले।

"क्या मतलब?"

"इतने विशाल अन्तरिक्ष में फेंका गया यान ठीक यहीं कैसे लौट आया? उसे निश्चित रूप से यहाँ भेजा गया है। पायोनियर-10 ज़रूर किसी विकसित प्रगतिशील संस्कृति/ग्रह के पास पहुँच गया होगा। उन्होंने कोड को सुलझाया होगा और हमारा अता-पता लगाकर उसे यहाँ भिजवाया होगा। यानी कि वो संस्कृति इतनी अधिक विकसित है। सोचिए कि वे हमसे कितने आगे होंगे। इस यान को इसकी मूल स्थिति में ही भेजकर, उन्होंने हमसे दोस्ती जताई है, ऐसा मुझे लगता है। हमारी ओर से ली गई तस्वीरें यान के समूचे अन्तरंग को स्पष्ट रूप से दिखा रही हैं, वहाँ किसी भी प्रकार के शस्त्रास्त्र नहीं हैं। मुझे यकीन है कि पायोनियर-10 को उसके मूल ढाँचे में ही भेजा गया है। फिर भी आप सब यांत्रिक उपकरणों द्वारा इन तस्वीरों को अच्छी तरह से जाँच-परख लें। मैं चार घण्टे आराम कर रहा हूँ।" पिछले चौबीस घण्टों में फ्लेमिंग एक पल भी सो न पाए थे।

* * *

चार घण्टों के पश्चात् डॉ. फ्लेमिंग आँखें मलते हुए उठ बैठे। उनकी इच्छाशयनी उन्हें ऐसे समय काम आ जाती। ऑफिस जाने से पहले उन्होंने

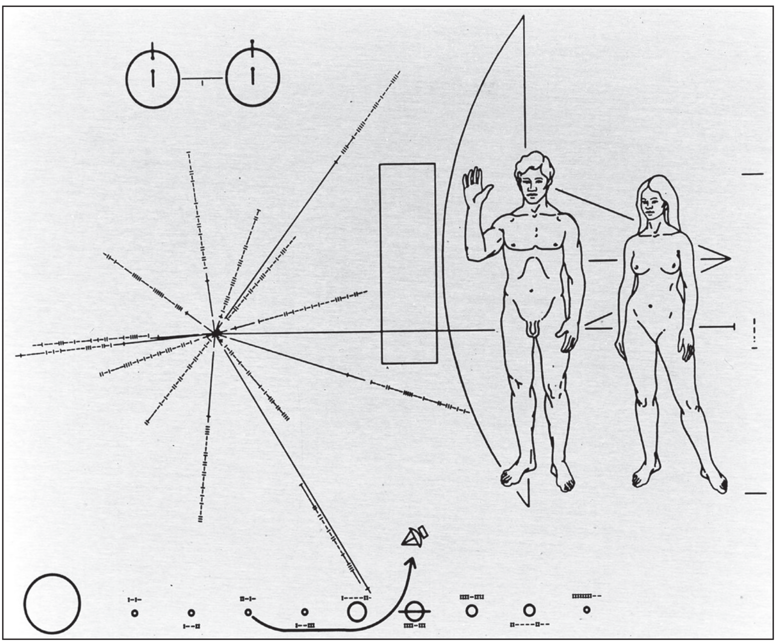

एक कप कॉफी पी ली। वे निकलने ही वाले थे कि उनका दस वर्षीय पुत्र टॉम दौड़ता हुआ आया और बोला, "डैडी! 'ट्रोजन हॉर्स' क्या होता है? मैंने एक कहानी में यह शब्द पढ़ा परन्तु मतलब समझ में नहीं आया।"

"यह तो एक लम्बी कहानी है। किसी दिन फुर्सत से सुनाऊँगा तुम्हें। थोड़े में समझा देता हूँ। ट्रॉय नामक शहर पर ग्रीक लोगों ने धावा बोल दिया था। कई दिनों तक उनके घेरे से ट्रॉय जूझता रहा। अन्त में शत्रु ने एक नकली घोड़ा ट्रॉय के पास भिजवाया। उस घोड़े के अन्दर छिपकर कई योद्धा अन्दर पहुँच गए और इस कपट मार्ग से प्रवेश पाकर, उन्होंने ट्रॉय को हरा दिया।"

"यानी कपट के मार्ग से, निर्भय शत्रु की छावनी में प्रवेश करने वाले साधन को, ट्रोजन हॉर्स कहते हैं?" टॉम ने पूछा। इस प्रकार से टॉम की आशंका का अस्थायी समाधान मिल गया था, "पर पूरी कहानी सुनानी होगी कभी।"

"बिलकुल! कल ही सुना दूँगा।"

डॉ. फ्लेमिंग का मन अकारण ही उद्विग्न हो गया। बहुत सारे विचारों ने उन्हें घेर लिया। वे तत्परता से ऑफिस निकल गए।

* * *

USF के प्रमुख कॉन्फरेंस रूम में प्रतिनिधियों की सभा चल रही थी। तभी डॉ. फ्लेमिंग तेज़ी-से अन्दर आए। उनका स्वागत करते हुए अध्यक्ष महोदय बोले।

"आइए, डॉ फ्लेमिंग। बधाई हो! आपने जो हल निकाला, उसी की वजह से हमें पायोनियर-10 वापस मिल रहा है। वरना हमने तो उसे नाहक भस्म ही कर दिया होता। अब हम उसे पूरे सम्मान से पृथ्वी पर ले आएँगे।"

"ज़रा रुकिए जनाब! आपने मेरी बात सुन ली, इसके लिए धन्यवाद। पर यदि, मेरी एक और बात सुन लेंगे तो मैं और आभारी रहूँगा। इस यान को पृथ्वी पर लाने से पहले उसकी पूरी जाँच करवाना अत्यन्त आवश्यक है। जिन लोगों ने उसे हमारे पास वापस भेजा है, शायद वे हमारे मित्र न हों।" डॉ. फ्लेमिंग ने कहा।

"पर आपने तथा आपके सहकर्मियों ने यांत्रिक उपायों द्वारा भेजी हुई तमाम तस्वीरों को गुप्ता ने जाँचा-परखा है। उसमें कुछ भी नज़र नहीं आया। यदि आप और भी तस्वीरें चाहते हैं तो कहिए, गुप्ता अभी भी यान के चक्कर काट रहा है।"

"जी नहीं। अलग से जाँच करने की ज़रूरत नहीं है। आपकी अनुज्ञा लेने से पहले ही उसकी व्यवस्था मैंने कर ली है क्योंकि समय बड़ा महत्वपूर्ण है। पायोनियर-10 अब और नज़दीक आ रहा है। अभी-अभी तैयार किए गए फोटोग्राफी इलेक्ट्रॉन बीम उपकरण लेकर SS-6 से मैंने टाकेनो को वहाँ भेजा है।"

"पर उससे क्या फर्क पड़ने वाला है? तस्वीर लेने हेतु प्रकाश की बजाय इलेक्ट्रॉनों को उपयोग में लाना है, बस।" एक प्रतिनिधि बोला।

"यदि वैसा ही हुआ तो मैं पायोनियर-10 को सही मानूँगा। वरना..."

"वरना क्या?..."

"वरना वह ट्रोजन हॉर्स है। इसका मुझे यकीन हो जाएगा।" डॉ. फ्लेमिंग मुस्कराए। ग्रीक पौराणिक कथा से अन्य सभी अनभिज्ञ थे, सो उनके चेहरों पर उत्सुकता भरा कौतूहल था।

तभी अध्यक्ष महोदय के सामने रखे फोन की घण्टी बजी। उन्होंने रिसीवर कान से लगाया और कूछ सुनने के बाद फोन को नीचे रखा और शान्ति से बोले।

"दोस्तो, टाकेनो का सन्देश आया है। इलेक्ट्रॉन बीम की सहायता से उसने कई फोटोग्राफ्स लिए, पर वे सब कोरे हैं।"

सभी की नज़रें फ्लेमिंग की ओर मुड़ीं।

"यानी मेरा अन्दाज़ा सही रहा, वह हमारा भेजा यान नहीं है। वह एक प्रतिकृति है, एण्टी मैटर* की! उसे किसी आवरण ने घेरा हुआ है शायद, जिसकी वजह से आसपास के मैटर से उसका सम्पर्क नहीं हो पाता। जिस प्रकार से इसका आवरण बनाया गया है, उस प्रौद्योगिकी से हम सर्वथा अनभिज्ञ हैं, पर उनकी प्रगति तो देखें कि इस प्रकार के आवरण को बनाकर, उसके अन्दर मूल यान की प्रतिकृति को रखकर, उसे यहाँ भेजा गया है। किस कदर वे प्रौद्योगिकी में हमसे आगे हैं। मैटर तथा एण्टीमैटर, दोनों का प्रकाश के साथ समान व्यवहार होता है। इसीलिए हम यान के बाहरी एवं अन्दरूनी भाग की तस्वीरें ठीक से ले पाए। परन्तु इलेक्ट्रॉन बीम को उस आवरण के अन्दर प्रवेश नहीं मिल पाया। इसलिए दूसरी बार की तस्वीरें कोरी रहीं। इलेक्ट्रॉन मैटर के बने होते हैं...

"मित्रो, यह यान निश्चित रूप से दोस्ती की भावना से प्रेरित होकर नहीं आया है। पृथ्वी पर उसका स्वागत करते समय आपका विनाश हो जाता। उस यान के खुलते ही मैटर तथा एण्टी मैटर का सम्पर्क हो जाता और बहुत बड़े पैमाने पर ऊर्जा निकलती जिसके आगे हमारे नाभिकीय अस्त्रों की ऊर्जा भी बहुत ही कम होती," डॉ. फलेमिंग ने कहा।

---

* *मैटर तथा एण्टी मैटर, पृथ्वी पर मौजूद परस्पर विरोधी घटक हैं। आधुनिक विज्ञान के अनुसार, प्रकाश के साथ दोनों की प्रक्रिया समान होती है। मैटर तथा एण्टी मैटर की वस्तुओं का बाह्य रूप समान होता है। उनके भौतिक गुण समान प्रतीत होते हैं परन्तु मैटर तथा एण्टी मैटर करीब आने पर, एक-दूसरे का विनाश करते हैं और भारी मात्रा में ऊर्जा का निर्माण होता है। हमारी पृथ्वी अथवा ग्रहमण्डल मैटर है। वहाँ एण्टी मैटर अधिक समय तक टिक नहीं पाता है।*

"तब इस यान का विनाश कैसे करें?"

"यह तो मुश्किल काम नहीं है। हम रिमोट कण्ट्रोल की मदद से अन्तरिक्ष में उस यान को खोलेंगे और तुरन्त उस पर मैटर की वर्षा कर डालेंगे। उस काम को शीघ्रता से करना होगा।"

जिस प्रकार से तय किया गया था, सारा काम हो गया। उस यान के विनाश के समय जो भारी विस्फोट हुआ, उसे दिन के उजियारे में भी पृथ्वी पर से देखा गया। सौभाग्य से, उसके कोई विशेष दुष्परिणाम न हो पाए।

"चलो छुट्टी हुई! पृथ्वी को बचाने के लिए धन्यवाद, डॉ. फ्लेमिंग" USF के अध्यक्ष ने कहा।

मगर डॉ. फ्लेमिंग चिन्तित थे। अनर्थ से बच गए...

पर यह आराम अस्थायी है। इसका एहसास उन्हें बेचैन कर रहा था।

जयंत विष्णु नारलीकर (1938-2025): प्रबुद्ध वैज्ञानिक और विज्ञान कथाकार। कैंब्रिज से गणित में डिग्रियाँ हासिल करने के बाद उन्होंने खगोल-विद्या और खगोल-भौतिकी में विशेष प्रावीण्य प्राप्त किया। किंग्ज़ कॉलेज के फेलो और इंस्टिट्यूट ऑफ थिओरेटिकल एस्ट्रोनॉमी के संस्थापक सदस्य के रूप में कुछ समय कैंब्रिज में रहे। IUCAA (Inter-University Centre for Astronomy and Astrophysics), पुणे के संस्थापक सदस्य। नारलीकर 'पद्मभूषण' और 'पद्मविभूषण' सहित कई राष्ट्रीय व अन्तर्राष्ट्रीय पुरस्कारों से सम्मानित हैं।

सभी चित्र इंटरनेट से साभार। समस्त चित्र एवं फोटो सन् 1972 को अन्तरिक्ष में भेजे गए वास्तविक यान पायोनियर-10 की बाहरी बनावट, अन्दरूनी सामग्री एवं उसके प्रक्षेपण पथ पर आधारित हैं।

यह कहानी सन् 2013 में विज्ञान प्रसार द्वारा प्रकाशित जयंत विष्णु नारलीकर के विज्ञान कथाओं के संकलन कृष्ण विवर और अन्य विज्ञान कथाएँ से साभार।

सवालीराम

सवाल: बाल और नाखून काटने पर हमें दर्द क्यों नहीं होता?

-संगीता, कक्षा-7, पचमढ़ी, मप्र

जवाब: हमारे शरीर के किसी हिस्से में चोट लग जाए या खरोंच आ जाए तो कितना दर्द होता है। कई बार तो यह दर्द इतना असहनीय होता है कि पेनकिलर तक लेनी पड़ जाती है। त्वचा कटने-फटने पर भी दर्द होना लाज़मी है, लेकिन वहीं अपने ही शरीर का हिस्सा होने के बावजूद बाल और नाखून के साथ ऐसा नहीं होता। हम लोग इत्मीनान से नेल-कटर से नाखून काट लेते हैं और हज़ामत की दुकान पर बाल भी कटवा लेते हैं। बाल और नाखून काटने पर दर्द क्यों नहीं होता, यह जानने के लिए हमें इनकी बनावट को समझना होगा। शुरुआत बाल से करते हैं।

बाल की खाल

बाल और नाखून, दोनों ही जीवित ऊतक नहीं होते बल्कि उनका त्वचा से बाहर दिखने वाला हिस्सा मृत कोशिकाओं से बना होता है। बालों में मुख्य रूप से दो भाग पाए जाते हैं। हेयर शाफ्ट (hair shaft) जो त्वचा से बाहर दिखाई देता है। यह मृत केराटिन (keratin) से भरी कोशिकाओं से बना होता है। इसमें न तंत्रिका कोशिकाएँ होती हैं, न रक्त वाहिनियाँ। इसलिए जब बालों को कैंची से काटा जाता है तो बिलकुल भी दर्द का एहसास नहीं होता।

दूसरी ओर, बाल की जड़ त्वचा के अन्दर धँसी होती है। यही भाग जीवित कोशिकाओं से बना होता है। इसके आसपास तंत्रिकाएँ (नर्व) और रक्त वाहिनियाँ मौजूद होती हैं। इसलिए बाल को जड़ से ज़ोर-से खींचा जाए तो दर्द होता है। हेयर वैक्सिंग या थ्रेडिंग के दौरान होने वाले दर्द का एहसास मुख्य रूप से बालों की जड़ों से मिलने वाली दर्द की अनुभूति के कारण होता है।

वास्तव में, बाल ज़मीन पर गड़े खूँटे की तरह होते हैं। हम केवल इनका ऊपरी हिस्सा देख पाते हैं जो मृत कोशिकाओं का बना होता है। बाल का निचला जीवित हिस्सा, यानी बाल की जड़, त्वचा में बने छेद जैसे गड्ढों यानी पुटक या रोमकूप में धँसी रहती है। बाल त्वचा की ऊपरी परत से निकलते हैं और जड़ बीच की परत में पाई जाती है। बाल की जड़ों के पास वे कोशिकाएँ पाई जाती

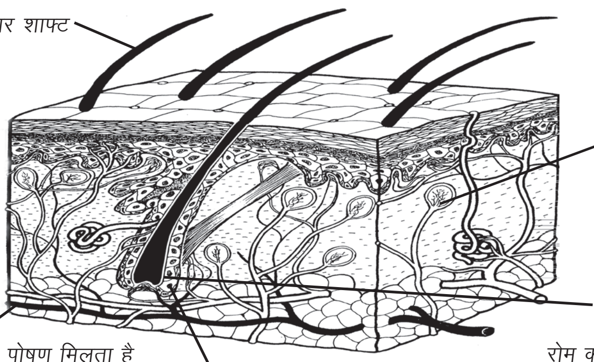

चित्र-1: बाल की संरचना। खोपड़ी की ऊपरी त्वचा: *यह त्वचा का वह भाग है जिसे हम देख सकते हैं (जहाँ हेयर शाफ्ट पाए जाते हैं)। इसमें बारीक छिद्र और बाल होते हैं।*
खोपड़ी की अन्दर की त्वचा: *यह त्वचा की दूसरी परत है, जिसमें नीचे दिए गए सभी अंग पाए जाते हैं।*

हैं जो बाल की नई कोशिकाओं का निर्माण करती हैं। यह नवनिर्मित कोशिकाएँ ऊपर की ओर खिसकती जाती हैं। त्वचा के नीचे बाल लगभग जीवित होते हैं। जैसे-जैसे बाल जड़ों से ऊपर की ओर बढ़ते हैं, उन्हें पोषण मिलना बन्द हो जाता है और उनमें केराटिन नामक प्रोटीन शामिल होने लगता है। जब तक बाल की कोशिकाएँ सतह पर पहुँचती हैं, वे पूरी तरह मृत हो जाती हैं।

नाखून

नाखून हमारे शरीर का एक महत्वपूर्ण हिस्सा है। इसके अवलोकन मात्र से चिकित्सक अक्सर शरीर कुपोषित होने, पीलिया होने या हीमोग्लोबिन कम होने जैसे प्रारम्भिक अनुमान लगाते हैं।

जो संरचनात्मक बात हमने बालों में देखी, लगभग वैसा ही नाखून में भी है। नाखून का सबसे अगला सिरा यानी सफेद भाग (free edge) मृत केराटिन कोशिकाओं से बना होता है। इसलिए नेल-कटर से इस हिस्से को काटने पर दर्द नहीं होता।

नाखून का आधार (nail matrix) त्वचा के भीतर छुपा होता है। यहीं पर नई कोशिकाएँ बनती हैं। यदि यह हिस्सा चोटिल हो जाए तो काफी दर्द होता है और नाखून की वृद्धि भी प्रभावित होती है।

नाखून त्वचा की ऊपरी परत या

एपिडर्मिस का एक अलग रूप है। त्वचा की ऊपरी परत, बालों और नाखून में केराटिन पाया जाता है। ये मृत कोशिकाएँ होती हैं। नाखून के ठीक पीछे त्वचा के नीचे उसका जीवित हिस्सा यानी कि मेट्रिक्स पाया जाता है। नाखून वहीं से निकलता है। मेट्रिक्स की कोशिकाएँ नाखून में परिवर्तित होती हैं।

* * *

बाल और नाखून की संरचनात्मक बनावट को देखकर आप इस विचार पर तो पहुँच ही सकते हैं कि बाल काटने या नाखून काटने पर हमें दर्द नहीं होता क्योंकि बाल और नाखून मृत कोशिकाओं से बने हैं और उनमें तंत्रिकाओं के छोर मौजूद नहीं होते हैं। बालों और नाखूनों का जो भाग त्वचा के पार बढ़ता है, वह पूरी तरह से मृत कोशिकाओं का बना होता है।

चूँकि, उनमें किसी भी प्रकार की जीवित कोशिकाएँ मौजूद नहीं होती हैं इसलिए काटने पर दर्द नहीं होता। दर्द भी महसूस तब होता है जब तंत्रिकाओं के सिरों पर चोट लगती है और हमारे मस्तिष्क तक सन्देश पहुँचता है। लेकिन बालों और नाखूनों के ऊपरी भागों में न ही तंत्रिकाएँ होती हैं और न ही रक्त वाहिनियाँ, इसलिए मस्तिष्क तक कोई सन्देश नहीं पहुँचता।

लेकिन बालों को जड़ से खींचने, नाखून काफी अन्दर तक कट जाने या नाखून के किनारे की त्वचा (हैंगनेल) खिंच जाने से दर्द होता है, क्योंकि इन सभी जगहों पर जीवित त्वचा होती है। यह दर्द के संकेतों को मस्तिष्क तक भेजने में सक्षम होती है।

यदि इन्सानी बालों से आगे जाकर भेड़-सूअर की भी बात करें तो अगर इन प्राणियों के बाल कटर से काटे जा रहे हों तो उन्हें भी दर्द नहीं

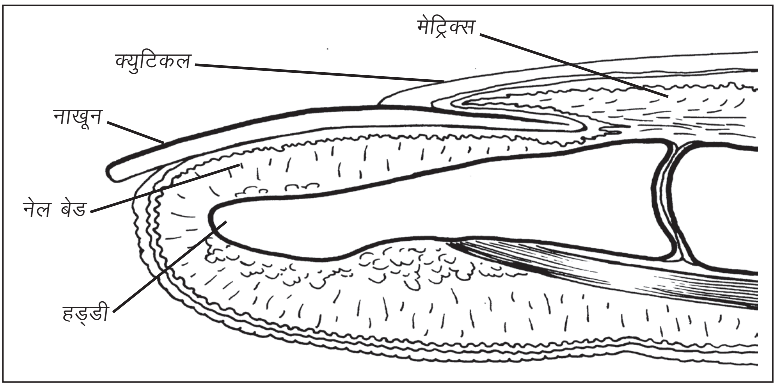

चित्र-2: नाखून की संरचना।

होगा। क्योंकि समस्त स्तनधारियों – इन्सान, भेड़, बकरी, कुत्ता, बिल्ली, सूअर आदि सभी में बाल की मूल संरचना लगभग एक-जैसी होती है।

बाल और नाखून के सिरों पर दर्द न होने के अलावा बाल-नाखून की जड़ में मौजूद स्टेम सेल पर पिछले कुछ सालों में कुछ महत्वपूर्ण शोधकार्य हुए हैं जिनसे यह आस बन्ध रही है कि पुनर्जनन (regeneration) में इन स्टेम सेल की कुछ भूमिका हो सकती है।

क्या आपको ध्यान आता है कि आपके शरीर में बाल और नाखून के अलावा क्या और भी कोई ऐसे हिस्से हैं जिन्हें दर्द का एहसास नहीं होता है? अपना जवाब सवालीराम से साझा कर सकते हैं।

अनु गुप्ता: *एकलव्य* के किशोरावस्था शिक्षण कार्यक्रम से सम्बद्ध।

सावन यादव: जेनेटिक्स में एम.एससी. तथा बायोटेक्नोलॉजी में पीएच.डी. की है। वर्तमान में वे महर्षि उत्तम सामाजिक विज्ञान केन्द्र (कृषि महाविद्यालय), सलकनपुर में जेनेटिक्स एवं प्लांट ब्रीडिंग के सहायक प्राध्यापक के रूप में कार्यरत हैं।

सभी चित्र एकलव्य द्वारा प्रकाशित अनु गुप्ता की किताब *शरीर का कवच - त्वचा, बाल और नाखून* से साभार।

इस बार का सवाल: मच्छर के काटने पर त्वचा में क्या होता है? क्या मच्छर काटते समय त्वचा में कोई रसायन छोड़ता है, या उसकी लार के कारण खुजली और लालिमा होती है?

- पलाश सोनी, कक्षा-9, भोपाल, मप्र

आप हमें अपने जवाब sandarbh@eklavya.in पर भेज सकते हैं।

प्रकाशित जवाब देने वाले शिक्षकों, विद्यार्थियों एवं अन्य को पुस्तकों का गिफ्ट वाउचर भेजा जाएगा जिससे वे पिटाराकार्ट से अपनी मनपसन्द किताबें खरीद सकते हैं।